BED IV- EPC 3

आत्म बोध

Understanding the Self

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

ISBN: 13-978-93-85740-94-7
BED IV- EPC 3 (BAR CODE)

BED IV- EPC 3

आत्म बोध

Understanding the Self

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अध्ययन बोर्ड	विशेषज्ञ समिति
□**प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल** (अध्यक्ष- पदेन), निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल** (अध्यक्ष- पदेन), निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**प्रोफेसर मुहम्मद मियाँ** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), पूर्व अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया व पूर्व कुलपति, मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय, हैदराबाद	□**प्रोफेसर सी० बी० शर्मा** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), अध्यक्ष, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा
□**प्रोफेसर एन० एन० पाण्डेय** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, एम० जे० पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली	□**प्रोफेसर पवन कुमार शर्मा** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय व सामाजिक विज्ञान संकाय, अटल बिहारी बाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल
□**प्रोफेसर के० बी० बुधोरी** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), पूर्व अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, एच० एन० बी० गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, उत्तराखण्ड	□**प्रोफेसर जे० के० जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**प्रोफेसर जे० के० जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**प्रोफेसर रम्भा जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**प्रोफेसर रम्भा जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**डॉ० दिनेश कुमार** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**डॉ० दिनेश कुमार** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**डॉ० भावना पलड़िया** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**डॉ० भावना पलड़िया** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**सुश्री ममता कुमारी** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं सह-समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**सुश्री ममता कुमारी** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं सह-समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** (सदस्य एवं संयोजक), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
□**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** (सदस्य एवं संयोजक), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	

दिशाबोध: प्रोफेसर जे० के० जोशी, पूर्व निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

कार्यक्रम समन्वयक:	कार्यक्रम सह-समन्वयक:	पाठ्यक्रम समन्वयक:	पाठ्यक्रम सह समन्वयक:
डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**सुश्री ममता कुमारी** सह-समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**डॉ० स्वेता द्विवेदी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, मिजोरम केन्द्रीय विश्वविद्यालय, आइजोल, मिजोरम	**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड

प्रधान सम्पादक	उप सम्पादक
डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**डॉ० स्वेता द्विवेदी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, मिजोरम केन्द्रीय विश्वविद्यालय, आइजोल, मिजोरम

विषयवस्तु सम्पादक	भाषा सम्पादक	प्रारूप सम्पादक	प्रूफ़ संशोधक
डॉ० स्वेता द्विवेदी सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, मिजोरम केन्द्रीय विश्वविद्यालय, आइजोल, मिजोरम	**डॉ० स्वेता द्विवेदी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, मिजोरम केन्द्रीय विश्वविद्यालय, आइजोल, मिजोरम	**श्रीमती मनीषा पन्त** अकादमिक परामर्शदाता, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	**श्रीमती मनीषा पन्त** अकादमिक परामर्शदाता, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

सामग्री निर्माण

प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**प्रोफेसर आर० सी० मिश्र** निदेशक, एम० पी० डी० डी०, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

© उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, 2017

ISBN-13-978-93-85740-94-7

प्रथम संस्करण: 2017 (पाठ्यक्रम का नाम: आत्म बोध, पाठ्यक्रम कोड- BED IV- EPC 3)

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पुस्तक के किसी भी अंश को ज्ञान के किसी भी माध्यम में प्रयोग करने से पूर्व उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लेना आवश्यक है। इकाई लेखन से संबंधित किसी भी विवाद के लिए पूर्णरूपेण लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निपटारा उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल में होगा।

निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा निदेशक, एम० पी० डी० डी० के माध्यम से उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के लिए मुद्रित व प्रकाशित। **प्रकाशक:** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय; **मुद्रक:** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय।

कार्यक्रम का नाम: बी० एड०, कार्यक्रम कोड: BED- 17

पाठ्यक्रम का नाम: आत्म बोध, पाठ्यक्रम कोड- BED IV- EPC 3

इकाई लेखक	खण्ड संख्या	इकाई संख्या
डॉ० नृपेन्द्र वीर सिंह सहायक प्रोफेसर सह सहायक निदेशक, शिक्षा पीठ, दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया, बिहार	**1**	**1**
डॉ० पतंजलि मिश्र सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान	**1**	**2**
डॉ० सुरेश चन्द्र पचौरी सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, श्री गुरू रामराय पी० जी० कॉलेज, देहरादून, उत्तराखण्ड	**1**	**4**
श्रीमती विजेता कुमारी सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, जमशेदपुर वीमेंस कॉलेज, जमशेदपुर, झारखण्ड	**1**	**5**
मो० ओवैस अहमद सिद्दीकी आई० ए० एस० ई०, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली	**2**	**1**
श्री सुरेश सिंह मेहता सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, आम्रपाली ग्रुप ऑफ इंस्टीट्यूट्स, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	**2**	**2 व 3**
श्रीमती शबीना अंसारी वरिष्ठ रिसर्च फेलो, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश	**2**	**4 व 5**

BED IV- EPC 3
आत्म बोध
Understanding the Self

खण्ड 1		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	स्वयं के स्व या आत्मन एवं पहचान का प्रतिबिम्ब तथा उसका आलोचनात्मक विश्लेषण, स्व या आत्मन के विकास एवं पहचान को मूर्तता प्रदान करने वाले कारकों की पहचान	2-19
2	स्वयं के बारे में एक दार्शनिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण विकसित करना एवं एक शिक्षक के रूप में स्वयं के दार्शनिक एवं सांस्कृतिक समझ को विकसित करना	20-31
3	इकाई: तीन	-
4	एक शिक्षक के रूप में प्रभावी श्रवण कौशल, स्वीकारिताएं एवं सकारात्मकता को विकसित करना	32-44
5	विद्यार्थियों में स्व के विषय में जागरूकता के विकास में मदद करना	45-63

खण्ड 2		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	व्यावसायिक पहचान और उस पर पड़ने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक प्रभाव	65-76
2	एक शिक्षक बनने में स्वयं की आकांक्षाएं, सपने, चिंताओं और संघर्षों का अन्वेषण करना, पुनर्चयन करना और साझा करना	77-92
3	साथियों के अनुभव, प्रयासों, आकांक्षाओं, सपने आदि पर पुनःसुधार	93-107
4	शिक्षक से अपेक्षित मूल्यों तथा व्यावसायिक नीतियों की समझ विकसित करना जिससे वह स्वयं तथा शिक्षण क्षेत्र से जुड़े वातावरण में सामंजस्य स्थापित कर सके	108-122
5	छात्रों की सुखावद स्थिति में सुविधा प्रदाता तथा सहयोगी के रूप में शिक्षक की भूमिका को समझना	123-137

खण्ड 1

Block 1

इकाई 1- स्वयं के स्व या आत्मन एवं पहचान के प्रतिबिम्ब तथा आलोचनात्मक विश्लेषण स्व या आत्मन के विकास एवं पहचान को मूर्तता प्रदान करने वाले कारकों की पहचान करना

Reflections and Critical Analysis of Over Own 'Self' and Identity. Identifying Factors in the Development of 'Self' and Shaping Identity

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 स्व या आत्मन की अवधारणा
1.3.1 स्व या आत्मन की भारतीय एवं पश्चिमी अवधारणा में अन्तर
1.3.2 स्व या आत्मन की अवधारणा में निहित प्रत्यय
1.3.2.1 आत्म-जागरूकता
1.3.2.2 स्व-अवधारणा या आत्म-अवधारणा
1.3.2.3 आत्म-सम्मान
1.3.2.4 स्वीकार्य या स्वीकार्यात्मक-सम्मान
1.4 स्व या आत्मन का प्रतिबिम्ब
1.5 स्व या आत्मन की आलोचना
1.6 पहचान की अवधारणा
1.7 पहचान का प्रतिबिम्ब
1.8 स्व या आत्मन एवं पहचान को प्रभावित करने वाले कारक
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस व्याप्त जगत में अनेकों जीवों और अजीवों का अस्तित्व है। प्रत्येक जीव या अजीव अपने अस्तित्व को बनाएं रखते हुए अपने विकास के चरमोत्कर्ष की ओर अग्रसर रहता है। विकास क्रम की प्रक्रिया प्रत्येक जीव या अजीव में अपनी-अपनी विशिष्टता के अनुरूप चलती रहती है। दृश्यमान जगत में व्याप्त जीव या अजीव में विकास के संदर्भ में मानव को सर्वोच्च एवं सर्वोत्तम माना जाता है। इसका कारण यह माना जाता है कि मानव में चिंतन एवं विवेक नामक शक्तियां व्याप्त रहती है जो उन्हें औरों से श्रेष्ट एवं बेहतर बनाती है। विकास की अविरल धारा में अन्यों के समान मानव भी निरन्तर सतत रूप से गतिमान रहता है किन्तु मानव विकास के सभी परिप्रेक्ष्यों का मूल्यांकन स्वयं या स्व या आत्मन को केन्द्र बिन्दु में रखते हुए करता है। स्व या आत्मन की व्याख्या विभिन्न वैचारिक अनुक्षेत्रों में अलग – अलग प्रकार से की गई है। यहाँ पर सभी का उल्लेख कर पाना संभव नहीं है। यहाँ पर केवल स्व या आत्मन की मनोवैज्ञानिक व दार्शनिक व्याख्याओं के दो विवरणों को उल्लखित किया जा रहा है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि:

1. स्व या आत्मन को परिभाषित कर सकेंगे।
2. स्व या आत्मन में निहित पक्षों को स्पष्ट एवं व्याख्यित कर सकेंगे।
3. स्व या आत्मन के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. आत्म-ज्ञान और आत्म जागरूकता को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. आत्मन या स्व के संदर्भ में दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक धारणाओं का वर्णन कर सकेंगे।
6. आत्मन या स्व की पाश्चात्य एवं भारतीय अवधारणा में अन्तर कर सकेंगे। अंतर्विषयक उपागम की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
7. आत्मन या स्व के प्रतिबिम्ब की अवधारणा को विवेचित कर सकेंगे।
8. आत्मन की आलोचना की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
9. पहचान की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
10. पहचान के प्रतिबिम्ब के प्रत्यय की विवेचना कर सकेंगे।
11. आत्मन के विकास एवं पहचान को मूर्तता प्रदान करने वाले कारकों का वर्णन कर सकेंगे।

1.3 स्व या आत्मन की अवधारणा

आत्मन रोजर्स के व्यकितत्व सिद्धांत का एक महत्त्वपूर्ण संप्रत्यय है। रोजर्स का मानना है कि धीरे-धीरे अनुभव के आधार पर प्रासंगिक क्षेत्र (Phenomenal field) का एक भाग अधिक विशिष्ठ (differentiated) हो जाता है और इस भाग को ही रोजर्स ने आत्मन की संज्ञा दी है। रोजर्स का मानना है

कि आत्मन कोई एक अलग विमा या क्षेत्र नहीं है और न ही अलग से व्याप्त कोई विशिष्ट तत्व है अपितु आत्मन से आशय सम्पूर्ण प्राणी से होता है।

आत्मन का विकास शैशवावस्था से शुरू हो जाता है और जैसे –जैसे शिशु की अनुभूतियों का एक अंश या भाग अधिक मूर्त रूप प्राप्त करने लगता है और धीरे-धीरे मैं और मुझे की विशेषताओं से अभिभूत होने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि शिशु धीरे-धीरे अपने आत्मन से अवगत होने लगता है। जिसके कारण उसे अच्छे एवं बुरे कृत्यों का अभिज्ञान होने लगता है, उसे सुखद व दुखद अनुभूतियों के अन्तर का प्रत्यक्षण होने लगता है एवं वह आत्म निर्धारित किसी कसौटी के आधार पर अपनी अनुभूतियों के औचित्य की तर्कसंगत परख करना प्रारम्भ कर देता है। जैसे- 'मैं कैसा हूँ, मेरी क्या विशेषताएँ हैं, दूसरे मुझकों क्या समझते हैं आदि। जीवन के विविध् रूपों के प्रति एक शिशु धीरे-धीरे जो अवधरणाएँ विकसित करता हैं इन सबका एक संगठित और सुसम्बद्ध रूप ही एक ऐसी सम्पूर्णता है जिसे स्व या आत्मन के नाम से अभिहित किया जाता है। आत्मन इन्द्रियों की ग्रहणशीलता का ही मूलत: परिणाम है। इन्द्रियों से होने वाला प्रत्यक्षीकरण ही संज्ञान के रूप में परिपक्व एवं विकसित होता है।

मनोवैज्ञानिक कार्ल रोजर्स और इब्राहम मास्लो आत्म अवधारणा की धारणा को सुव्यवस्थित व्याख्यित करने के लिए जाने जाते है। रोजर्स के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति 'आदर्श स्व (Ideal Self)' तक पहुंचने के लिए प्रयासरत रहता है। आदर्श स्व वह जिसे व्यक्ति या कोई समाज पूर्ण रूप से स्वीकार्य एवं अपेक्षित समझता है। जॉन टर्नर द्वारा विकसित आत्म वर्गीकरण सिद्धांत के अनुसार आत्म अवधारणा में कम से कम दो स्तर निहित माने जाते है: एक व्यक्तिगत पहचान से सम्बंधित है और दूसरा सामाजिक पहचान से सम्बंधित है। किसी भी व्यक्ति के स्व या आत्मन के विकास एवं निर्धारण में उस व्यक्ति की व्यक्तिगत पहचान एवं उसकी सामाजिक पहचान की अहम् भूमिका होती है।

स्व या आत्मन की यह विशेषता है कि यह संगठित इकाई होते हुए भी एक प्रक्रिया का धोतक है, एक ऐसी प्रक्रिया जो आत्मन या स्व को विकासशील रखती है लेकिन साथ ही किसी एक समय में इसका एक सुनिश्चित स्वरूप भी होता है जो व्यकित के तत्कालीन व्यवहार को एक निश्चित रूप प्रदान करता है।

भारतीय संदर्भ में 'स्व या 'आत्मन की अवधरणा एक सामाजिक सांस्कृतिक संदर्भ में विकसित होने वाली एक अवधरणा है। भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक परिवेश में निरंतरता, लोचशीलता एवं परिवर्तनशीलता आदि गुण पाए जाते है। प्राचीन वैदिक कालीन ऋचाएं , संहिताओं, सूत्रों, कर्मकाण्ड तथा महाकाव्यों के चरित्र अभी भी जनमानस की चेतना का गहनतम अंग हैं।

महर्षि अरबिन्द के शैक्षिक चिंतन वास्तव में उनके जीवन तथा आध्यात्मिक दर्शन की देन है। उन्होने मानव समाज के विकास एवं कल्याण के लिए आध्यात्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त किया। मानवीय विकास से उनका अभिप्राय मानव कल्याण की भावना से था। उनका दर्शन अध्यात्म, ब्रह्मचर्य तथा योग पर आधरित है। इन्होंने मानवीय विकास की पूर्णता की प्राप्ति के लिए स्व या आत्मन का विकास आवश्यक माना। व्यक्ति के स्व या आत्मन विकास से उनका अभिप्राय व्यक्ति के मन और आत्मा की शक्तियों के सर्वांगीण तथा समग्र विकास से है। व्यक्ति को मुक्त एवं स्वच्छन्द वातावरण प्राप्त होने पर उसके स्व का संभाव्य एवं उच्चतम विकास हो सकता है। महर्षि अरविन्द ने समग्र रूप से स्व को भौतिक,

प्राणिक, मानसिक, अन्तरात्मिक तथा अध्यात्मिक पक्षों से निर्मित माना। इनके पूर्ण संतुलित विकास से ही व्यक्ति के स्व का पूर्ण विकास संभव है।

1.3.1 स्व या आत्मन की भारतीय एवं पश्चिमी अवधारणा में अन्तर

'स्व या 'आत्मन की भारतीय एवं पश्चिमी अवधरणा में सबसे महत्त्वपूर्ण अंतर स्व या आत्मन तथा परिवेश की बीच सीमा रेखा का स्पष्ट निर्धारण है। पश्चिमी मानस में ये सीमांकन लगभग अपरिवर्तनीय तथा दृढ़ है जबकि भारतीय जनमानस में यह अवधारणा लगातार परिवर्तनशील सीमा रेखाओं से नियंत्रित एवं निर्देशित होता है। भारतीय वैचारिकता में व्यक्ति का स्व विस्तृत होकर परिवेश में मिलकर अंतक्रिया करता हुआ एकाकार हो जाता है और अगले ही क्षण वह उससे पूर्ण रूपेण मुक्त अवस्था में सरोकार कर जाता है। जीव के आत्मन या स्व की पंचकोशीय अवधारणा स्थूल या भौतिक गुणों से प्रारम्भ होकर सूक्ष्म तत्वों की ओर सदैव अग्रसर रहती है और इस प्रकार यह एक श्रेणीबद्ध अनुक्रम में संगठित हो पूर्णता को प्राप्त करती है।

1.3.2 स्व या आत्मन की अवधारणा में निहित प्रत्यय

पाश्चत्य दार्शनिक देकार्ते का यह कथन अत्यंत प्रसिद्ध है 'मैं सोचता हूँ इसलिए मैं हूँ'। इस कथन के विपरीत कुछ दार्शनिकों का कहना था कि प्रश्न फिरभी वही रह जाता है, मै कौन हूँ? इन प्रश्नों का सामान्य उत्तर दे पाना संभव नहीं है और न ही सभी विद्वान इससे सहमत हो सकते है। यहाँ सबसे पहले उन तत्वों की चर्चा की जा रही है जिनके आधार पर स्व या आत्मन को निर्मित माना जाता है। स्व या आत्मन के आधार या इससे संयोजित कुछ घटकों को अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है और यही आत्मन के विकास में अहम् भूमिका का निर्वाह करते है। ये निम्न है-

1.3.2.1 **आत्म-जागरूकता**

आत्म- जागरूकता को स्व से बाहर स्व को अभिव्यक्त करने की क्षमता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। आत्म-जागरूकता से आशय आस-पास के वातावरणीय उद्दीपकों के प्रति मानसिक रूप से सचेतन रहने से है। अपने चरों तरफ के वातावरणीय परिवेश से अलग स्व को एक अनोखे व्यक्ति के रूप में देखने और अपने विचारों, भावनाओं, अनुभूतियों और व्यवहारों पर प्रतिबिंबित करने की प्रवृति है। आत्म-जागरूकता स्व या आत्मन के क्रियाओं व व्यवहारों को न्यायसंगत बनाने तथा अपने अन्तर्निहित गुणों को व्याख्या करने का धरातल प्रदान करता है। आत्म जागरूकता विकसित करने के लिए अपने मन में विचारों और व्याख्याओं में परिवर्तन बनाने के लिए सक्षम बनाता हैं। अपने मन में व्याख्या बदलने से स्व अपनी भावनाओं को बदलने के लिए अनुमति देता है। स्व जागरूकता एक भावनात्मक तरीका और सफलता प्राप्त करने में एक महत्वपूर्ण कारक की विशेषताओं में से एक है। आत्म जागरूकता के बाद स्व जहां अपने विचारों और भावनाओं को स्वयं ग्रहण करने लगता हैं, देखने के लिए अनुमति देता है यह भी

आप अपनी भावनाओं, व्यवहार और व्यक्तित्व के नियंत्रण को देखने की अनुमति देता है तो आप परिवर्तन जो स्व चाहता हैं, कर सकते हैं।

1.3.2.2 स्व-अवधारणा या आत्म-अवधारणा

स्व-अवधारणा उस प्रत्यय को कहा जाता है जिसमें मैं ऐसा हूँ, की समग्र धारणा निहित होती है। स्व-अवधारणा स्व या आत्मन के विषय में अपने विश्वासों, धारणाओं, अनुभूतियों, प्रत्यक्षण आदि के आधार पर निर्मित होती है जिसके निर्माण में कई प्रकार के कारक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष से अहम् भूमिका का निर्वहन करते है। जैसे कुछ कारक परिवार, संस्कृति और लिंग से सम्बंधित होते हैं। स्व-अवधारणा आत्मन का एक संज्ञानात्मक या वर्णनात्मक घटक है। स्व-अवधारणा से आशय उन सभी आयामों एवं अनुभूतियों से होता है जिससे कोई व्यक्ति स्वयं अवगत होता है यहाँ यह आवश्यक नहीं होता है कि उसका स्व के विषय में सभी प्रत्यक्षण सदैव सही ही हो। स्व-अवधारणा को प्राय: निम्न प्रकार के कथनों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है जैसे- मैं जो सोचता हूँ वह ....., मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो....., मुझे स्वयं पर पूर्ण विश्वास रहता है आदि। स्व-अवधारणा की यह विशेषता मानी जाती है कि इसका एक बार जो धारणा विकसित हो जाती है उसमें आसानी से परिवर्तन नहीं होता है। स्व-अवधारणा को बदलना अत्यंत सरल इसलिए नहीं माना जाता है क्योंकि इसमें गहरे-निर्धारित विश्वासों, दृष्टिकोणों और मूल्यों का प्रभाव रहता है।

1.3.2.3 आत्म-सम्मान

आत्म-सम्मान से तात्पर्य है कि व्यक्ति में अपने स्व या आत्मन को सम्मान एवं स्नेह देने की आवश्यकता से है। आत्म-सम्मान की यह आवश्यकता व्यक्ति में अर्जित प्रकृति की होती है और व्यक्ति में यह विभिन्न प्रकार के क्रिया-कलापों के संतोषजनक आत्म-अनुभूतियों से उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में, जब व्यक्ति को परिवार या समूह या समाज के महत्त्वपूर्ण व्यकितयों से मान-सम्मान मिलता है तो इससे उसमें सकारात्मक आत्म-सम्मान की भावना या प्रेरणा भी मजबूत हो जाती है। आत्म-सम्मान का तादाम्य व्यक्ति द्वारा स्व या आत्मन के लिए निर्धारित उस मूल्य से भी लिया जाता है जिसे वह अपनी समग्र आयामी विश्लेषण के पश्चात स्वयं के लिए सुनिश्चित करता है। आत्म-सम्मान एक प्रकार से आत्म-अवधारणा का मूल्यांकन है क्योकि यह व्यक्ति को इस पक्ष पर विचार करने के लिए उद्वेलित करता है कि व्यक्ति स्वयं अपने दृष्टीकोण में कितना मूल्यवान है। आत्म-सम्मान व्यक्ति के विभिन्न प्रकार के सम्बन्धों, पारस्परिक कौशल एवं जीवन के प्रति व्यक्ति के चिंतन व दृष्टिकोण को प्रभावित करता है। आत्मसम्मान किसी भी व्यक्ति के सफल सुखी जीवन का आधारभूत तत्व है। व्यक्ति आत्मसम्मान के अभाव में सफलता तो प्राप्त कर सकता है, बाह्य उपलब्धियों भरा जीवन भी आसानी से जी सकता है, किंतु व्यक्ति का अंतर्मन भी उतना ही सुखी, संतुष्ट और संतृप्त होगा, यह संभव नहीं है। आत्मसम्मान के अभाव में जीवन एक गंभीर अपूर्णता व रिक्तता से भरा रहता है। यह रिक्तता एक गहरी कमी का अहसास देती है

और जीवन एक अनजानी- रिक्तता, एक अज्ञात पीड़ा, असुरक्षा और अशांति से बेचैन रहता है। आत्मसम्मान का बाहरी उपलब्धियों और सफलताओं से बहुत अधिक लेना-देना नहीं है।

आत्म-सम्मान व्यक्ति की स्वयं सहज स्वीकृति, स्व-प्रेम, स्व-विश्वास, स्व-जागरूकता, स्व-ज्ञान, स्व-प्रत्यक्षण और स्व-सम्मान की व्यक्तिगत अनुभूति है, जो दूसरों के प्रभावों से मुक्त होता है अर्थात यह दूसरों की प्रशंसा, निंदा और मूल्यांकन आदि से स्वतंत्र है।वास्तव में आत्म-सम्मान व्यक्ति का स्व दृष्टी में स्वयं का मूल्यांकन है और अपनी मौलिक अद्वितीयता की आंतरिक समझ और इसकी गौरवपूर्ण अनुभूति है।

1.3.2.4 स्वीकार्य या स्वीकार्यात्मक-सम्मान

स्वीकार्य या स्वीकार्यात्मक सम्मान से आशय है अन्य व्यक्तियों या दूसरों द्वारा उसे स्वीकार किये जाने, दूसरों का स्नेह पाने एवं उनके द्वारा पसंद किये जाने की इच्छा से होता है। जैसे-जैसे बच्चों में आत्मन विकसित होता जाता है, इस तरह के स्वीकार्य या स्वीकार्यात्मक सम्मान प्राप्त करने की भावना की आवश्यकता तीव्र होने लगती है। सामान्यत: यह देखने को मिलता है कि जब दूसरों से बच्चों को सम्मान मिलता या प्राप्त होता है तब उनमें संतुष्टि की भावना उत्पन्न होती है और बच्चों को जब ऐसा सम्मान नहीं मिलता या प्राप्त हो पाता है तब उनमें असंतोष की भावना उत्पन्न होती है जोकि एक आवश्यकता के रूप में अभिव्यक्त होती है। इस प्रकार की आवश्यकता का स्वरूप पारस्परिक प्रकृति का माना जाता है। ऐसा इसलिए माना जाता है क्योकिं जब कोई व्यक्ति दूसरे को स्नेह एवं प्यार एवं अनुराग देकर दूसरे के स्वीकार्यात्मक सम्मान की आवश्यकता को संतुष्ट करता है तो उससे उसे अपने में भी एक तरह की आत्म-संतुषिट प्राप्त होती है। रोजर्स के अनुसार स्वीकार्यात्मक सम्मान की आवश्यकता दो प्रकार की होती है- शर्तपूर्ण स्वीकार्यात्मक सम्मान तथा शर्तरहित स्वीकार्यात्मक सम्मान ।

शर्तपूर्ण स्वीकार्यात्मक सम्मान में अन्य व्यक्तियों का स्नेह, प्यार एवं अनुराग प्राप्त करने के लिए उनके द्वारा निश्चित किए गए मानदण्डों के अनुरूप व्यक्ति अर्थात बच्चे को व्यवहार करना पड़ता है। रोजर्स का मत था कि बच्चों को इस तरह की शर्त रखकर उन्हें प्रेम या स्नेह देना उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है और ऐसे बच्चे एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति बनने से वंचित रह सकते है। शर्तहीन स्वीकार्यात्मक सम्मान में अन्य या दूसरे व्यक्तियों का स्नेह, प्यार एवं मान-सम्मान पाने के लिए कोई शर्त नहीं रखी जाती है। परिवार में माता-पिता द्वारा बच्चों को दिया गया स्नेह एवं मान-सम्मान इसी श्रेणी का सम्मान होता है। इस तरह के सम्मान पाने से बच्चे बहुत तेजी के साथ एक परिपूर्ण सफल व्यक्ति बनने की ओर अग्रसर होते हैं।

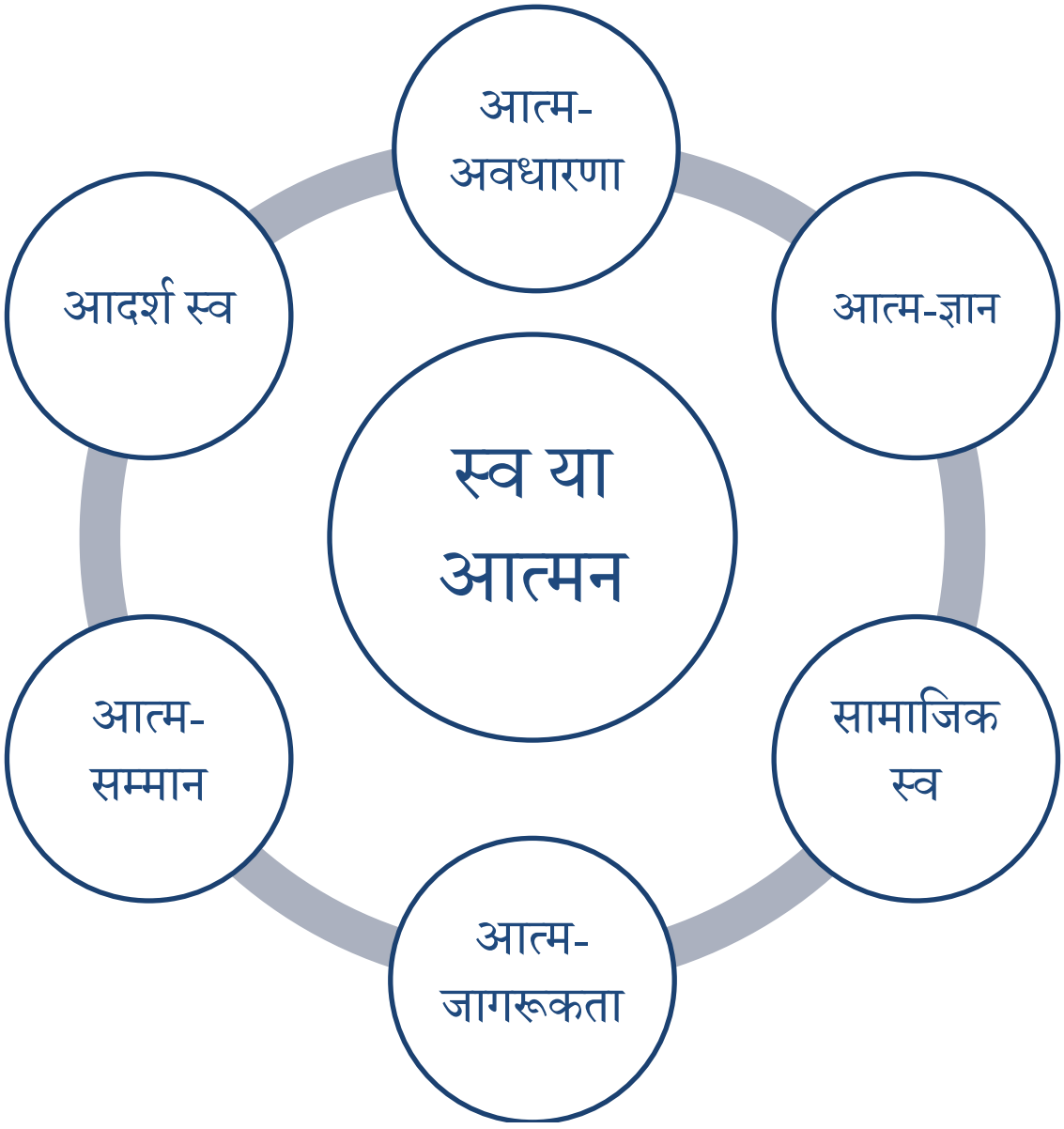

स्व या आत्मन के विकास की प्रक्रिया को इस चित्र के माध्यम से समझा जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. स्व या आत्मन के प्रत्यय को स्पष्ट करें?
2. स्व या आत्मन के भारतीय मत से आप क्या समझते है?
3. आत्मन या स्व के भारतीय एवं पाश्चात्य विचारधारा में अन्तर करें?

1.4 स्व या आत्मन का प्रतिबिम्ब

स्व या आत्मन का विकास में व्यक्ति के संज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक विषयगत अनुभवों की अहम् भूमिका होती है और साथ ही साथ उस व्यक्ति के स्व-ज्ञान, स्व-प्रत्यक्षण आदि को भी स्व या आत्मन का आधारभूत तत्व माना जाता है।स्व को परिलक्षित करना एक सामान्य गतिविधि एवं मानसिक उपलब्धि है।

स्व या आत्मन के सिद्धांत इस धारणा पर एक समान है कि आत्म-अभिव्यक्ति की क्षमता या प्रतिवर्तित क्षमता आत्मनिर्भर होने के लिए आवश्यक है।सिद्धांत इस तथ्य को भी सुविचारित करते है कि कैसे स्मृति स्व या आत्मन के अस्तित्व को बनाए रखती है। एक ओर स्व या आत्मन को एक प्राथमिक मानसिक संरचना के रूप में सुविचारित किया जाता है जो स्व या आत्मन के पहलू को विशिष्ट संदर्भ एवं सामाजिक संरचनाओं के बाहर भी अस्मिता का बोध कराते है। वही दूसरी ओर स्व या आत्मन को एक प्राथमिक संज्ञानात्मक क्षमता के रूप में किया जाता है जोकि स्व या आत्मन के आन्तरिक पहलूओं के निर्माण में अहम् भूमिका को निभाता है। एक व्यक्तिपरक परिप्रेक्ष्य इस बात पर अधिक केन्द्रित रहता है कि एक व्यक्ति कैसे अद्वितीय या अलग और दूसरों से कैसे भिन्न है किन्तु इसी परिप्रेक्ष्य में यह भी विचार किया जाता है कि एक व्यक्ति कैसे दूसरों के समान है और कैसे सम्बन्धों के माध्यम से एक-दूसरे से सम्बंधित है (संग्रहवादी परिप्रेक्ष्य)।

आत्म प्रतिबिम्ब एक दर्पण में स्वयं को खोजने के समान एवं उस दर्पण स्वयं के विषय में जो देख रहे है, उसका वर्णन करना है। यह स्व या आत्मन के विषय में आंकलन एवं मूल्यांकन करने का एक माध्यम है जिसमें स्व के कार्य-व्यवहार, गुणों विशेषताओं एवं कमियों आदि से सम्बंधित विषय निहित रहते है। स्व प्रतिबिम्ब से सामान्य आशय स्व के वाह्य या आन्तरिक पहलूओं के प्रति किसी विशेष परिप्रेक्ष्य में चिन्तनशील होने से है। इसका उद्देश्य स्व या आत्मन के शीलगुणों या विशेषताओं या इसकी प्रकृति में परिवर्तन, संशोधन या परिमार्जन करने से होता है।

आत्म प्रतिबिम्ब के माध्यम से व्यक्ति को आत्मन को जानने, अपनी योग्यता, क्षमता, कौशल आदि को विकसित करने एवं उनकी प्रभावशीलता की समीक्षा करने में सहायता मिलती है। यह एक प्रकार का सकारात्मक तरीका जिसके माध्यम व्यक्ति अपने आत्मन के अतीत और वर्तमान के पहलूओं का समीक्षात्मक आंकलन एवं मूल्यांकन करता है जिससे अपने आप को भविष्य के लिए अधिक कुशल एवं बेहतर बनाने का प्रयास करता है।

व्यक्ति की प्रत्येक प्रकार की भूमिकाओं में उसके आत्म प्रतिबिम्ब का प्रभाव पड़ता है चाहे वह परिवार के एक सदस्य के रूप में हो या कार्य परिस्थितियों में हो या एक अधिगमकर्ता के रूप अधिगम करते हुए परिस्थिति में हो। इन प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्ति अपनी आत्मन की भूमिकाओं में अपेक्षित परिवर्तन परिस्थितिजन्य कारणों या स्व सक्षमता या कुशलता की प्रभावशीलता के कारण करता रहता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति अपनी चिंतन शक्तियों का प्रयोग करता हुआ अपेक्षित परिवर्तनों की पहचान करता है और फिर उनमें स्व सक्षमता एवं कुशलता की सीमा के अनुकूल संशोधन एवं परिमार्जन लाने का प्रयास करता है। यह प्रक्रिया स्व की आवश्यकता से प्रत्यक्ष रूप से सम्बंधित होती है।

किसी भी व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में आत्म प्रतिबिम्बित करने की प्रक्रिया अत्यन महत्वपूर्ण एवं उपयोगी मानी जाती है। आत्म-प्रतिबिम्ब व्यक्ति में भावात्मक आत्म-जागरूकता का निर्माण करने में सहायता करता है। आत्म प्रतिबिम्ब के माध्यम से स्व से सम्बंधित अनेकों संशयों का संभावित समाधान मिल जाता है साथ ही साथ इसके माध्यम से व्यक्ति अपने आत्मन की भावनाओं, सक्षमता, कमजोरियों, कमियों एवं अंतर्नोद कारकों के प्रति बेहतर समझ को विकसित कर सकता है और व्यक्ति जब एक व्यक्ति अपने आत्मन के महत्वपूर्ण आयामों या पहलूओं को समझ लेता है तब वह अपने आप को परिवर्तित एवं कठिन परिस्थितियों के अनुकूल बना सकता है।

1.5 स्व या आत्मन की आलोचना

आत्म-आलोचना से आशय है कि किसी व्यक्ति के द्वारा अपने स्व या आत्मन का स्वयं के माध्यम से किए गए आंकलन एवं मूल्यांकन से है। आत्म-आलोचना सामान्य अध्ययनों एवं परिचर्चाओं में एक ऐसे नकारात्मक व्यक्तित्व की विशेषता के रूप में में विभूषित किया जाता है जैसेकि यह एक व्यक्ति के बाधित आत्म पहचान का हिस्सा हो। इसके विपरीत आत्म-आलोचना को एक व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में एक सुसंगत, व्यापक, गहन एवं सकारात्मक आत्म पहचान का रूप भी माना जाता है।आत्म की आलोचना का ध्येय यह होता है किस प्रकार स्व या आत्मन में व्यापतगत नकारात्मक प्रवृतियों, कमियों एवं कमजोरियों अकुशलताओं आदि का संशोधन व परिमार्जन किया जाए जिससे उनके प्रभावों को न्यून किया जा सकें तथा स्व या आत्मन में उनके परिलक्षित प्रभाव को कम किया जा सके।

किसी व्यक्ति के स्व प्रत्यय के विविध पक्ष होते है अर्थात किसी व्यक्ति के स्व के निर्माण एवं विकास में उसके उसके व्याप्तगत शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक विशेषताओं के साथ – साथ उसके परिवेशीय व सामाजिक घटकों का भी योगदान होता है। यह सभी कही न कही व्यक्ति के स्व या आत्मन के लिए मानसिक प्रतिरूपों या स्कीमा का निर्माण करते है। सामान्यत: कुछ लोगो का ऐसा मानना है कि स्व या आत्मन को दृढ़संकल्प एवं कठिन परिश्रम से बेहतर बनाया जा सकता है किन्तु यह भी माना जाता है कि अधिक स्व आलोचना अपेक्षित लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में बांधा का कार्य करती है। यदि कोई व्यक्ति स्व या आत्मन को पहले से ही बेकार व अक्षम समझता है तो वह कठिन परिश्रम से भी अपेक्षित परिणाम को नहीं प्राप्त कर सकता है। इस परिप्रेक्ष्य में कुछ उपयोगी दृष्टिकोण हो सकते है जोकि स्व या आत्मन के विकास एवं परिमार्जन में सकारात्मक प्रभाव डाल सकते है। जैसे-

- स्व के अस्थायी, परिवर्तनीय एवं विशिष्ट व्यवहार की आलोचना करे किन्तु वैश्विक एवं अपरिवर्तनीय विशेषताओं को स्वीकार करे।
- किन्ही भी परिस्थितियों की यदि आलोचना करे तो फिर उन्हें अपनी सक्षमता के अनुकूल बदलने का प्रयास करे।
- अपने स्व के केन्द्रण को स्व से विलग कर दूसरों पर ले जाने का प्रयास करना चाहिए जोकि अच्छे या बेहतर गुणों का पुंज हो।

- स्व या आत्मन की रुदिवादी या परम्परगत आत्म आलोचना की अपेक्षा इसकी दयालु एवं संचानात्मक आत्म-आलोचना का प्रयास करें।

अभ्यास प्रश्न

4. स्व या आत्मन के प्रतिबिम्ब की अवधारणा को स्पष्ट करें?
5. आत्मन ता स्व की आलोचना की धारणा को स्पष्ट करें?

1.6 पहचान की अवधारणा

पहचान किसी व्यक्ति के संदर्भ में गुणों, विशेषताओं, सामाजिक सम्बन्धों, भूमिकाओं और सामाजिक समूह के सदस्य जोकि व्यक्ति के अस्तित्व अर्थात वह कौन है?, को परिभाषित करती है। एक सामान्य संदर्भ में पहचान एक व्यक्ति के विचारों, इच्छाओं, अन्तक्रियाओं, चेतना और विश्वासों का एक अभौतिक संग्रह है। ऐसे कई लोग हैं जो तर्क देते हैं कि शरीर सीधे या प्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के व्यक्तित्व को बदलता है, लेकिन शायद ही कभी कोई यह तर्क देता हो कि शरीर में पूरी तरह से एक व्यक्ति की पहचान निहित रहती है। हर समय या सभी परिस्थितियों में किसी व्यक्ति या चीज़ की समानता या प्रदर्शित नहीं करती है कि पहचान में एक समानता होती है। इसे एक सामान्य एवं अधिक बुनियादी शब्दों में ले तो यहाँ पॉलिन डिविटे का उद्धरण लिया जा सकता हैं जो लिखते हैं कि पहचान हर रोज का शब्द है जिसे लोग अक्सर अपनी समझ के लिए कि वे कौन हैं?, का प्रयोग करते हुए करते है। एरिक्सन का मानना है कि वह किशोर जिसमें अपने परिवार और स्वयं के प्रति विश्वास का भाव है और जो स्वायत्त है तथा कार्यों की अगुआई में स्वयं को सहज महसूस करता है, साथ ही परिश्रमी है, वह कहीं न कहीं अपनी पहचान या भूमिका की स्पष्टता की ओर अग्रसर रहता है। इसमें किशोर के लिए 'मैं कौन हूँ प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो जाता है। किशोरों को वे कौन हैं, के भाव को मजबूती से स्थापित करने के लिए, विचारों, आदर्शों तथा पहचान की अपनी दुनिया की खोज करनी होती है। किशारों के समक्ष मनो-सामाजिक कार्य यह होता है कि उनमें अपनी या स्व की असिमता का बोध् विकसित हो सके तभी उसकी एक स्पष्ट पहचान का निर्माण हो सकता है।

मनोविज्ञान के संदर्भ में पहचान किसी व्यक्ति के गुण, विश्वास, अनुभूति, व्यक्तित्व, आत्म-सम्मान, अभिव्यक्ति एवं अभिव्यंजना का स्वरुप है। यह केवल एक व्यक्ति की ही नहीं अपितु एक समूह की पहचान को भी अभिव्यक्त करती है। पहचान की प्रक्रिया रचनात्मक या विनाशकारी किसी भी प्रकृति की हो सकती है। पहचान स्व-छवि (स्वयं के प्रति विकसित मानसिक प्रतिरूप), आत्म-सम्मान और व्यक्तित्व से सम्बंधित मानी जाती है। पहचान को साधारण शब्दों में व्यक्ति के स्वयं के प्रति आत्म-संगतता की सम्पूर्णता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

एक व्यक्ति अपने साथ कई प्रकार की पहचान का वहन कर सकता है जैसे एक व्यक्ति शिक्षक, माता, पिता, दादा, भाई, बहन, मित्र, पुत्र, पुत्री आदि कई प्रकार की पहचान को लिए हो सकता है। व्यक्ति की पहचान जिस रूप में आश्रित है व्यक्ति की भूमिका भी उसी के अनुकूल रहती है अर्थात व्यक्ति प्रत्येक

स्थिति में अपनी पहचान के अनुकूल अपनी भूमिका एवं अपेक्षाओं को अभिव्यक्त करता है। मनोवैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि पहचान की संरचना एक प्रकार से स्वयं को जानने या खोजने से सम्बंधित है जिसमें व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं व शक्तियों के साथ संभावित सामाजिक भूमिकाओं की अहम् भूमिका होती है। एक सामाजिक ताने-बाने के बीच स्वयं को परिभाषित कर पाना अत्यंत कठिन होता है। प्राय: यह भी देखने को मिलता है कि स्व पहचान के बिम्ब को बनाते समय कई बार पहचान संघर्ष होने लगता है तब कई बार कुछ लोग स्व की ऐसी गहरी पहचान बना बैठते है जो सामाजिक परिप्रेक्ष्य में स्वीकार्य नहीं मानी जाती है।

पहचान की संरचना के निर्माण की प्रक्रिया हेतु तीन लक्ष्य आवश्यक समझे जाते है। पहला यह कि व्यक्ति स्वयं की व्यक्तिगत क्षमताओं को जानने एवं उन्हें विकसित करने का प्रयास करे। व्यक्ति की यह व्यक्तिगत क्षमताएं इस तथ्य को प्रदर्शित करती है कि वह स्वयं की अन्य क्षमताओं की अपेक्षा ज्यादा बेहतर कर सकता है। इससे यह तथ्य उभर कर प्राप्त होता है कि उसमें सर्वश्रेष्ठ क्षमता क्या है। इस क्षमता में अपेक्षित संशोधन एवं परिमार्जन कर इसे और उपयोगी बनाने का प्रयास करना चाहिए। धीरे-धीरे यही विशिष्ट क्षमता उसकी पहचान का अभिन्न अंग बन जाती है। दूसरा यह है कि जीवन के लिए किसी एक उद्देश को चुनना या बनाना। यह इसलिए आवश्यक माना जाता है कि व्यक्ति आखिर अपने जीवन में क्या हासिल या प्राप्त करना चाहता है। जीवन का उद्देश्य व्यक्ति की वास्तविक प्रतिभाओं एवं कौशल के साथ संगत होना आवश्यक है। उद्देश्य की पूर्ति या कार्यान्वन के लिए अवसरों को खोजना व उन्हें प्राप्त करना आवश्यक है। कई समाजों में उद्देश्य के परिप्रेक्ष्य में पहचान सम्बंधित विकल्पों में पहचान गतिशीलता एवं लचीलापन अधिक होता है और कई समाज इस परिप्रेक्ष्य में कठोर होते है जिसका स्पष्ट प्रभाव पहचान पर पड़ता है। पहचान के अन्तिम लक्ष्य को अन्तिम कहना गलत होगा क्योकि पहचान की प्रक्रिया का कभी अंत नहीं होता है और यह सम्पूर्ण जीवन काल में विकसित और परिमार्जित होती रहती है। किसी व्यक्ति की पहचान उसकी अपेक्षाओं के अनुकूल बनने से उसमें आत्म-सम्मान की भावना बढ़ जाती है।

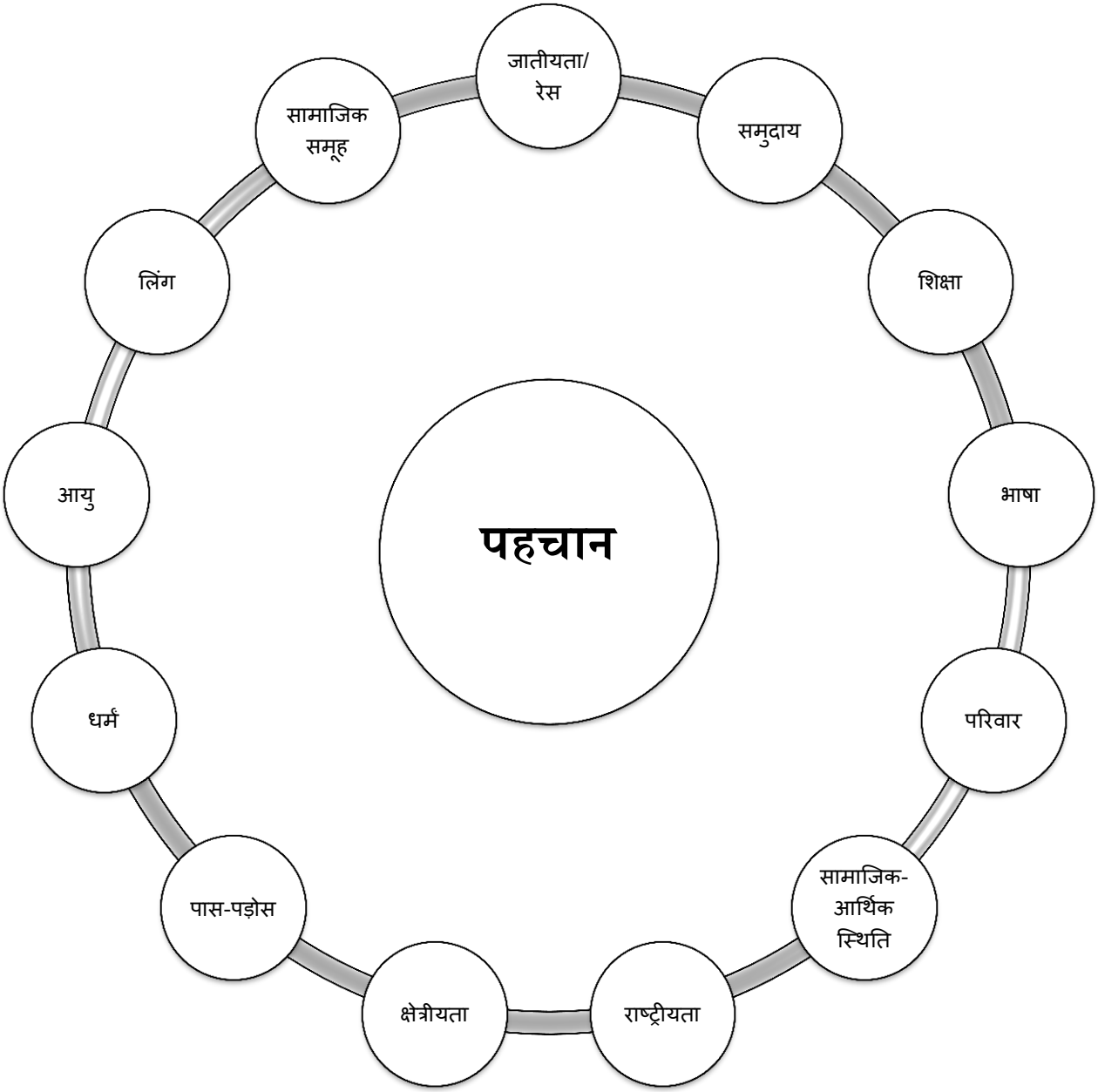

पहचान की मूर्तता के स्वरुप की प्रक्रिया को इस चित्र द्वारा समझा जा सकता है।

1.7 पहचान का प्रतिबिम्ब

किसी भी व्यक्ति में पहचान सम्बन्धी प्रतिबिंब और अवलोकन की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है जो एक निरंतर परिवर्तन और विकास के मार्ग में अग्रसर रहती है। पहचान से सम्बंधित प्रक्रिया माता और बच्चे की पहली अंत:क्रिया के माध्यम से शुरू हो जाती है। पहचान के प्रारंभिक प्रक्रिया में बच्चा सबसे अधिक अपनी छूने एवं बाद में देखने की ज्ञान्नेद्रियों का सहारा लेता है। पहले वह दूसरे लोगों को स्पर्श के माध्यम से पहचानने का प्रयास करता हैं और इस प्रक्रिया का अंत तब होता है जब अन्य ज्ञानेन्द्रियों का विकास हो जाता है। विकास एवं परिपक्वता के साथ इनके प्रयोग में परिमार्जिता आती जाती है और बच्चा छूने के अलावा देखने व सुनने के आधार भी पहचान के स्मृति चिन्ह बनाने लगता है।

किसी व्यक्ति की पहचान उसके अपने स्व या आत्मन के सदिश होती है। इसका कारण यह माना जाता है कि व्यक्ति की पहचान उसमें व्याप्तगत गुणों, विशेषताओं या अवगुणों के किसी विशिष्ट पहलू से होती है। लोग आंतरिक अंत:क्रियाओं के माध्यम से अपनी पहचान बनाते हैं या किसी समूह से संबंधित होते हैं या किसी विशिष्ट शैली या कला में पारंगता के कारण आदि। इसके विविध प्रकारों से परिभाषित किया जा सकता है जैसे- नेता, अधिकारी, शिक्षक, अनुयायी, स्वतंत्र और उड़नेवाला आदि, सामाजिक विज्ञान के सामान्य क्षेत्र में पहचान को और अधिक सरल ढंग से परिभाषित किया जा सकता है जैसे कि कोई कैसे खुद को समझता है और कैसे उन्हें एक समूह या उसकी परिधि की संबद्धता के भीतर माना जाता है। पहचान की स्पष्टता एवं समझ हेतु आगे दिए गए विशेषण प्रभावी मदद करने में अनुप्रयोगी हो सकते है- कौन, क्या, कहाँ, कब, क्यों, और कैसे। ये वह विशेषण है जिनके माध्यम से अपेक्षित जानकारी प्राप्त कर पहचान में सुस्पष्ट ता लायी जा सकती है।

सामान्य सन्दर्भों में यह कहा जा सकता है कि किसी व्यक्ति की पहचान पसंद या नापसंद से होती है और पसंद या नापसंद से पहचान बनती है। दैनिक क्रिया-कलाप एवं सुनिश्चित आधारो पर, किसी व्यक्ति के द्वारा किए गए कार्यों, लोगों के साथ व्यक्ति की अन्ताक्रियों या समय बिताने या उसके द्वारा चुने गए सिद्धांतों से ही उसकी पहचान को परिभाषित कर सकते है। किसी व्यक्ति की पहचान में उसके अंतर्वैयक्तिक संचारों, सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भो की अहम् भूमिका रहती है। पहचान संस्कृति के माध्यम से भी भिन्न हो सकती है, जो कई चीजों से प्रभावित हो सकती है जैसे धर्म, सामाजिक वर्ग, पीढ़ी और राजनीतिक संबद्धता आदि। इसके अलावा, विचारों के क्षेत्र के आधार पर पहचान को अलग तरह से परिभाषित किया जा सकता है उदाहरण के लिए, लोगों की अपनी राष्ट्रीय पहचान होती है, जहां किसी विशिष्ट राष्ट्र या क्षेत्र के लोग उन लोगों के लिए अलग-अलग राष्ट्रीय पहचान या क्षेत्रीय पहचान या जातीय पहचान या स्थानीय पहचान रख सकते हैं जबकि दूसरों के लिए इनके मायने अलग हो सकते है। जो उनके पास विदेशी हैं।

अभ्यास प्रश्न

6. पहचान की अवधारणा से आप क्या समझते है?
7. पहचान के प्रतिबिम्ब की धारणा के आशय को स्पष्ट करें?

1.8 स्व या आत्मन एवं पहचान को प्रभावित करने वाले कारक

कोई भी व्यक्ति जन्म से ही किसी न किसी परिवार का सदस्य रहता है। जन्म होने के पश्चात उसमें सीखने, ज्ञान एवं समझ के गुण विकसित होते ही वह सबसे पहले अपने परिवार के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अनुभवों को ग्रहण करना या उनसे प्रभावित होने लगता है। बच्चे पर केवल तत्कालिक प्रत्यक्षीकृत लक्षणों का ही प्रभाव नहीं रहता है अपितु जन्म के पूर्व से उसे जो भी विरासत के रूप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष से प्रदान किया गया होगा उसका भी अमिट प्रभाव व्यक्ति के स्व और पहचान में रहता है। घर एवं परिवार के वातावरण में बच्चा अच्छे एवं बुरे दोनों प्रकार के अनुभवों को ग्रहण करता है किन्तु उस पर किन लक्षणों का प्रभाव हो सकता है इसकी भविष्यवाणी का पाना पूर्ण रूप में संभव नहीं है।

i. **घर या परिवार -** घर या परिवार किसी भी व्यक्ति की प्रथम पाठशाला होती है। परिवार की सभी भौतिक एवं अभौतिक विशेषताओं का नवजात पर प्रभाव पड़ता है। परिवार एवं परिवार के सदस्यों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थितियों, अंतर्वैयक्तिक समबन्धों एवं भूमिकाओं का भी प्रभाव नवजात के शारीरिक, मानसिक, सामजिक, भावात्मक, नैतिक विकास में पड़ता है। नवजात शिशु से परिपक्कव व्यक्ति बनने तक परिवार एवं परिवार के सदस्यों के व्यवहार, प्रतिक्रियाओं, क्रिया-कलापों, भूमिकाओं आदि का प्रत्यक्ष प्रभाव व्यक्ति के अधिगम प्रवृतियों एवं व्यक्तित्व पर पड़ता है और भावी समय में इसी आधार पर स्व या आत्मन एवं पहचान का विकास होता है।

ii. **विद्यालय -** विद्यालय एक ऐसी संस्था है जहाँ पर किसी भी व्यक्ति को प्रथम बार एक निश्चित परिपाटी के अनुकूल औपचारिक धरातल पर विषयी ज्ञान के साथ सामाजिक नियमों, आचार एवं व्यवहार से परिचित कराया जाता है। एक व्यक्ति बच्चे के रूप में अपने सहपाठियों, शिक्षकों, प्रशासक और सलाहकारों के साथ आपसी अंतक्रिया एवं वार्तालाभ करते हुए अधिगम एवं अनेकों व्यवहारों को खुद में आत्म-सात करता हैं। विद्यालय वह जगह है जहां एक बच्चा न केवल विषयी ज्ञान को अधिगमित करता है अपितु विभिन्न कार्यों, खेल, बाहरी गतिविधियों, अनुशासन आदि के अनुभवों से भी अधिगम करता है। बच्चे के व्यक्तित्व के शीलगुणों के विकास में विद्यालय के भौतिक एवं अभौतिक वातावरण का प्रत्यक्ष प्रभाव रहता है और आगे चलकर उसके यही गुण के रूप में उसकी पहचान का हिस्सा बनते है।

iii. **समाज-** समाज एक वृहद् इकाई है और मानव को एक सामाजिक प्राणी माना जाता है। समाज के विभिन्न क्रिया-कलापों एवं क्रिया-प्रक्रियों में कोई भी मानव प्रतिभाग करते हुए अपने विकास की ओर अग्रसर रहता है। समाज के कई प्रभावों से मानव अधिगम करता रहता है। समाज की

विभिन्न संस्कृतियों, परम्पराओं, रीतिरिवाजों, संस्कारों, नियमों एवं मानदंडों आदि का व्यक्ति में प्रतक्ष्य या अप्रतक्ष्य प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक समाज की अपनी विशिष्ट पहचान होती है और उस समाज विशेष से सम्बंधित लोगों में यह विशेषताएं सदैव परिलक्षित होती है।

iv. **मीडिया -** मीडिया व्यक्ति की पहचान को सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरीके से प्रभावित कर सकती है। इसका प्रभाव व्यक्ति में उसके विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में अधिक होता है। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव किशोर एवं किशोरियों पर पड़ता है। अक्सर यह देखने में मिलता है कि इस अवस्था में किशोर या किशोरियां मीडिया के माध्यम से प्रयोजित रोल माडलों में किसी विशेष के प्रति उनका रुझान अधिक रहता है और वह अपने अपनी पहचान को उसके अनुकूल बनाने का प्रयास करते है। जैसे- हेयर स्टाइल बनाना, कपड़ों का पहनावा, जीवन शैली आदि। कई बार यह भी देखने को मिलता है कि किसी विशिष्ट पहचान को बनाने के प्रयास में उसकी अपनी पहचान पर संकट आ जाता है और वह अवसाद एवं चिंता के घेरे से घिर जाते है।

v. **परिणाम अथवा घटनाएं -** मानव जीवन में होने वाली घटनाएं या उनके परिणामों के प्रभाव सुखद या दुखद अनुभूति के रूप में व्यक्ति को प्रभावित करते है। घटनाओं के परिणामों के रूप प्राप्त अच्छे और बुरे अनुभव जीवन मूल्यों की परिपाटी, जीवन शैली, पहचान या व्यक्तित्व आदि में पूर्ण परिवर्तन कर एक नई अद्भुत कहानी का निर्माण कर सकते है अर्थात व्यक्ति की पूर्ण पहचान उसके जीवन की एक छोटी सी घटना से बदल सकती है।

vi. **सफलता -** व्यक्ति के जीवन में छोटी-छोटी कामयाबी या सफलताएं उसके व्यक्तित्व शीलगुणों को दृढ़ता प्रदान करती है और उसकी पहचान को विशिष्टता प्रदान करती है। सफलताएं व्यक्ति में नवीन एवं सकारात्मक गुणों का संचार करती है और असफलताएं व्यक्ति को चिंता एवं अवसाद की स्थिति में पंहुचा देती है। व्यक्ति की पहचान बनाने में उसके जीवन प्राप्त की सफलताओं एवं असफलताओं का योगदान माना जाता है चाहे वह सकारात्मक प्रभाव जे साथ हो या नकारात्मक प्रभाव के साथ।

vii. **संस्कृति -** व्यक्ति के पहचान पर संस्कृति का परोक्ष एवं अपरोक्ष दोनों प्रकार का प्रभाव रहता है। व्यक्ति की जीवन शैली में आसानी से उसके सांस्कृतिक विशेषताओं का स्पष्ट दर्शन किया जा सकता है। संस्कृति का इतना प्रभाव व्यक्ति पर होता है कि वह दूसरे सांस्कृतिक परिवेशों एवं समाजों में रहते हुए भी अपनी संस्कृति की विशिष्टता के अमिट प्रभाव से मुक्त नहीं हो पाता है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी एक सांस्कृतिक पहचान रहती है जो उसकों अन्यों से अलग बनाए रखती है।

viii. **आत्मविश्वास -** आत्म-विश्वास अपने आप में इतनी शक्तिशाली अन्तर्निहित शक्ति है जोकि व्यक्ति की पहचान उसके वांछनीयता के अनुरूप निर्मित करने में सक्षम रहता है। व्यक्ति का आत्म-विश्वास उसमें अन्तर्निहित वह स्व सिद्धांत है जो स्व की संपूर्ण कार्यप्रक्रिया को स्वचालित रूप से संचालित करता हैं। आत्म-विश्वास को अपने आप में एक रहस्मयी अंतर्भूत क्षमता माना जाता है जोकि एक व्यक्ति के अस्तित्व की सम्पूर्णता को निर्धारित करते है। यह स्व के आत्म-

मूल्यांकन हेतु मार्गदर्शक सिद्धांत है जो किसी भी व्यक्ति के चेतन प्रयासों द्वारा उसकी स्वयं की क्षमता, शक्ति एवं प्रभाव की वास्तविकता से उसे परिचित कराता है एवं अन्यों में उसकी पहचान की विशिष्टता को अनोखा बनाए रखता है।

यहाँ पर कुछ और अन्य कारकों की चर्चा की जा रही जो किसी व्यक्ति की पहचान को विकसित करने अहम् भूमिका निभाते है।

ix. **बचपन** -स्वाभाविक रूप से, जिस तरह से किसी व्यक्ति का पालन एवं पोषण किया जाता है उसका उस व्यक्ति के जीवन में अमिट प्रभाव रहता है। व्यक्ति के बचपन की अहम् भूमिका होती है उसके पहचान के विकास में। बचपन की अवस्था को एक ऐसी अवस्था माना जाता है जहाँ पर किसी व्यक्ति की पहचान पारिवारिक परिवेश, सामाजिक ताने-बाने, धार्मिक क्रिया-कलापों एवं आर्थिक गतिविधियों आदि की छत्र-छाया में धीरे-धीरे एक सुनिश्चित आकार को प्राप्त करती है। बचपन की सभी क्रिया-विधियों, संस्कारो एवं शिक्षाओं का व्यक्ति के जीवन में तह उम्र प्रभाव रहता है। व्यक्ति की पहचान बचपन में ग्रहण किए गए संस्कारों के अनुकूल विकसित होती है।

x. **वातावरण** - व्यक्ति के चारों तरफ विद्यमान वातावरण उसकी पहचान को एक सुनिश्चित आकार देता है। व्यक्ति के घर, आस-पास के परिवेश, विद्यालय, समाज, संस्कृति आदि का वातावरण परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से व्यक्ति को प्रभावित करता है। वातावरणीय परिस्थितियों में व्यक्ति औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से अनेकों प्रकार की सकारात्मक एवं नकारात्मक शिक्षाओं को ग्रहण करता है। जिन मूल्यों में उसकी अभिरुचि होती है उसके अनुकूल वह अपने आचार एवं विचार को विकसित करता है एवं अपने आप की पहचान उसी के अनुकूल विकसित करने का प्रयास करता है।

xi. **जीवन के अनुभव** - प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन अनेकों प्रकार के अनुभवों को प्राप्त करता है। इन अनुभवों के माध्यम से अनेकों प्रकार की शिक्षाएं ग्रहण करता है। जीवन के अनुभव तीन प्रकार की अनुभूतियाँ व्यक्ति मे विकसित करते है क्रमशः सुखद, दुखद एवं तटस्थ। कई बार ऐसा देखने को मिलता है कि जीवन किसी घटना विशेष ने व्यक्ति के जीवन परिपाटी को ही पूर्णतया बदल दिया। उसकी पहचान भी उसके जीवन आए बदलावों से मुक्त नहीं होती है।

xii. **लिंग** - अनेकों समाजों में लिंग पहचान के अनुरूप व्यक्ति की सामाजिक भूमिकाओं का निर्धारण किया गया है। व्यक्ति जिस लिंग की पहचान के साथ जन्म लेता है उसके साथ उस समाज विशेष के लिंग मानदंड एवं रूढ़िवादी परम्पराएं अपने वैचारिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक व धार्मिक चिंतन के साथ उसके जीवन से सदैव जुड़े रहते है। जिस समाज या संस्कृति का स्वरुप जैसा होता है वहाँ उसी प्रकार की लिंग सम्बन्धी पहचान की भूमिकाओं का निर्धारण किया जाता है।

xiii. **सामाजिक समूह** - प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में अनेकों समूहों का सदस्य रहता है। समहू के सदस्यों एवं समूह की गतिशीलता का प्रभाव व्यक्ति के स्व की पहचान में पड़ता है। व्यक्ति की बुनियादी सामाजिक पहचान को आकार देने में सामाजिक समहूओं की अहम् भूमिका होती है।

व्यक्ति अपनी रूचि, योग्यता एवं अन्य किसी विशिष्टता के आधार पर ही अपने को किसी समूह का भागीदार बनाता है और समूह अपनी अलग पहचान स्थापित करने के लिए अपना सर्वोत्तम करने का प्रयास करता है।

अभ्यास प्रश्न

8. जीवन के अनुभव एवं बचपन की पहचान के विकास में क्या भूमिका है, स्पष्ट करें?
9. संस्कृति एवं लिंग का स्व एवं पहचान के विकास एवं मूर्त्तता को स्पष्ट करें?

1.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत स्व या आत्मन की अवधारणा के भारतीय एवं पश्चिमी चिंतन की व्याख्या की गई है एवं आत्मन के प्रतिबिम्ब तथा आलोचना का वर्णन किया गया है। इसमें पहचान की अवधारणा, प्रतिबिम्ब आदि का वर्णन किया गया है। इसमें स्व या आत्मन के विकास एवं पहचान को मूर्तता को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन किया गया है।

1.10 शब्दावली

1. **आत्मन:** आत्मन से आशय किसी प्राणी विशेष में व्याप्त विशिष्टताओं से है।
2. **आत्म-जागरूकता:** आत्म-जागरूकता से आशय आस-पास के वातावरणीय उद्दीपकों के प्रति मानसिक रूप से सचेतन रहने से है।
3. **स्व-अवधारणा:** इससे आशय स्व या आत्मन के विषय में अपने विश्वासों, धारणाओं, अनुभूतियों, प्रत्यक्षण आदि से है।
4. **आत्म-सम्मान:** इससे आशय व्यक्ति में अपने स्व या आत्मन को सम्मान एवं स्नेह देने से है।
5. **पहचान:** इससे आशय एक व्यक्ति के विचारों, इच्छाओं, अन्तक्रियाओं, चेतना और विश्वासों का एक अभौतिक संग्रह है जिसका संदर्भ एक विशेष व्यक्ति के लिए हो।

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Huitt, W. (2011). Self and self-views Educational Psychology Interactive. Valdosta, GA: Valdosta State University.
2. Leary, M. R. and Tangney, J. P. (2012 Edited). Handbook of Self and Identity, The Guilford Press, New York

3. Abrams, D. (1994). Social self-regulation [Special issue: The self and the collective]. Personality and Social Psychology Bulletin, 20, 473-483.
4. Erikson, E. H. (1951). Childhood and society. Norton Publication New York

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्व या आत्मन को परिभाषित करते हुए इसके महत्व का वर्णन कीजिए?
2. स्व या आत्मन के पाश्चात्य एवं भारतीय मत में अन्तर स्पष्ट करते हुए इसमें निहित धारणाओं का वर्णन कीजिए?
3. स्व या आत्मन के प्रतिबिम्ब की विवेचना कीजिए?
4. आत्म की आलोचना से आप क्या समझते है? स्व के विकास में इसके महत्व को स्पष्ट कीजिए है?
5. पहचान को परिभाषित करते हुए इसके महत्व की विवेचना कीजिए कीजिए?
6. पहचान के मनोवैज्ञानिक पक्ष को स्पष्ट करते हुए इसके प्रतिबिम्ब की विवेचना कीजिए?
7. स्व या आत्मन के विकास एवं पहचान की मूर्तता में अहम् भूमिका निभाने वाले कारकों की कारण सहित विवेचना कीजिए?

इकाई 2 - स्वयं के बारे में एक दार्शनिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण विकसित करना एवं एक शिक्षक के रूप में स्वयं के दार्शनिक एवं सांस्कृतिक समझ विकसित करना

Building an Understanding about Philosophical and Cultural Perspectives of "self" Developing an Understanding of one's own Philosophical and Cultural Perspectives as a Teacher

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 स्व की अवधारणा से तात्पर्य
2.4 स्वयं के बारे में एक दार्शनिक दृष्टिकोण
2.5 स्वयं के बारे में एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण
2.6 शिक्षक के रूप में स्वयं का दार्शनिक दृष्टिकोण शिक्षक के रूप में स्वयं का सांस्कृतिक दृष्टिकोण सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

विकास मानव जीवन में चलने वाली एक सतत प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में मनुष्य अपने आप अर्थात स्वयं को खोजने की कोशिश करता रहता है। व्यक्तित्व के गतिशील (dynamic) होने की कारण स्वयं को खोजने एवं जानने की प्रक्रिया भी आजीवन चलती रहती है। जब हम शिक्षक के सन्दर्भ में स्वयं को जानने, समझने या फिर पहचानने की चर्चा करते हैं तो मामला और भी गूढ़ और मुश्किल हो जाता है क्योंकि शिक्षक तो विद्यार्थियों को स्वयं को पहचानने और सफलता के नए आयाम छूने के लिए प्रेरित करने वाला होता है । ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षक भी स्वयं को जानने एवं पहचाने का प्रयत्न पूरी इमानदारी के साथ करे। इस अध्याय में हम स्वयं के बारे में एक दार्शनिक दृष्टिकोण , स्वयं के

बारे में एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण, साथ ही साथ शिक्षक के रूप में स्वयं का दार्शनिक दृष्टिकोण, शिक्षक के रूप में स्वयं का सांस्कृतिक दृष्टिकोण इत्यादि की विस्तार से चर्चा करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. स्व के अवधारणा को समझ पाने में समर्थ होगा।
2. स्वयं के बारे में एक दार्शनिक दृष्टिकोण की समझ विकसित करने के पहलुओं को समझ पायेंगे।
3. स्वयं के बारे में एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण की समझ विकसित करने के पहलुओं को समझ पायेंगे।
4. शिक्षक के रूप में स्वयं का दार्शनिक दृष्टिकोण की समझ विकसित करने के पहलुओं को समझ पायेंगे।
5. शिक्षक के रूप में स्वयं का सांस्कृतिक दृष्टिकोण की समझ विकसित करने के पहलुओं को समझ पायेंगे।

2.3 स्व की अवधारणा से तात्पर्य (Meaning of the concept of self)

स्व' का सम्प्रत्यय (The concept of Self)

व्यक्ति स्वयं के बारे में जो सोचता है तथा अपने बारे में जो अवधारणा विकसित करता है, उसे 'स्व' की अवधारणा (Concept of Self) कहते है। यह दो रूपों में हो सकता है, 'वास्तविक स्व'(Real Self) एवं ;आदर्शात्मक स्व' (Ideal Self) 'वास्तविक स्व' का तात्पर्य है व्यक्ति अपने बारे में क्या सोचता है या प्रत्यक्षीकृत करता है, जैसे वह कौन है? उसमें क्या-क्या विशेषताएं हैं? आदि। 'आदर्शात्मक स्व' का आशय वह कैसा होना चाहता है' तथा 'आगे चलकर कैसा बनना चाहता है, इस प्रकार 'स्व' के दोनों रूपों में से प्रत्येक का सम्बन्ध शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक पहलू से होता है। शारीरिक दृष्टिकोण में शारीरिक अनुभव, यौन एवं शारीरिक क्षमता तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में बुद्धि, कौशल एवं अन्य लोगों के साथ मानसिक क्षमताओं का प्रदर्शन आदि से स्व सम्बन्धित होता है।

व्यक्तित्व के विकास में आनुवांशिक कारक (Hereditary factors) तथा परिवेशीय कारक (Environmental factors) दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। थॉमस एंव सहयोगियों का मानना है की यदि आनुवांशिकता तथा पर्यावरण के बीच सही ढंग से समायोजन (Adjustement) स्थापित नहीं होगा तो संगठित व्यक्तित्व का विकास होना असम्भव है। व्यक्तिगत अनुभव भी व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते हैं। शाल (1960) के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि जिन व्यक्तियों की कष्टदायक अनुभूतियाँ (Painful experiences) अधिक होती हैं वे सुखद अनुभव रखने वाले व्यक्तियों की तुलना में कम समायोजित होते हैं।

'स्व का विकास (The development of self)

'स्व' के विकास में सामाजिकीकरण (socialisation) की अहम भूमिका होती है। बच्चों के प्रारंभिक 'स्व' के स्वरुप पर माता-पिता तथा सहोदरों (siblings) का अधिक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वे प्रारम्भिक वर्षों में उन्हीं के सम्पर्क में सर्वाधिक रहते है। बोसार्ड (1956) का मानना है जिस बालक के छोटे भाई-बहन होते हैं उनकी भूमिका परिवार में एक जिम्मेदार बालक की हो सकती है। इसका भी प्रभाव बालक के स्व के विकास (Development of self) पर पड़ता है। बालक जब स्कूल में प्रवेश करता है तब उसका सामाजिक दायरा बढ़ता है जिससे उसका स्व एकांगी (Self- Centred) हो जाता है। बालक की विभिन्न वस्तुओं, व्यक्तियों एवं घटनाक्रमों के प्रति अभिवृतियां उन अभिवृत्तियों से प्रभावित होती हैं जो उसके जीवन में प्रमुख अभिकर्ता (Main Agent) जैसे शिक्षक, माता-पिता, पड़ोसी, मित्र के रूप में महत्वपूर्ण होती हैं अतः उसका स्व सम्प्रत्यय 'मुल्यांकनों" से बना होता है। यदि वे मूल्याकंन अनुकूल हुए तो बालक का 'स्व' अनुकूल होगा, अन्यथा वह अपना अवमुल्यांकन करेगा। अतः 'स्व' के विकास में मानसिक क्षमताएँ, जो विभिन्न परिस्थितियों को समझने तथा उपयुक्त व्यवहार करने में सहायक होती हैं, की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

अभ्यास प्रश्न

1. स्व के संप्रत्यय (Concept of Self) को स्पष्ट करें। Clarify the concept of self.
2. आप स्व के विकास से क्या समझते हैं ? What do you understand by development of self?
3. व्यक्तित्व के विकास में अनुवांशिक एवं परिवेशीय कारकों का क्या महत्व है? What is the importance of hereditary and environmental factors in the development of personality?

2.4 स्वयं के बारे में एक दार्शनिक दृष्टिकोण (Philosophical perspective towards self)

स्व के सन्दर्भ में जो सबसे महत्वपूर्ण विचार या परिपेक्ष्य है वह है अस्तित्ववादी परिप्रेक्ष्य (Existential Perspective)। यह परिप्रेक्ष्य व्यक्ति के विचारों एवं व्यवहार पर बल देता है। इसकी विशेष रुचि व्यक्ति के स्व में, स्व के मूल्यांकन में, भावनाओं में एवं संवेदनाओं के अध्ययन में है । अस्तित्ववादी विचार या प्रत्यय की अपेक्षा व्यक्ति के अस्तित्व (Existence) को अधिक महत्त्व देते हैं। इनके अनुसार सारे विचार या सिद्धांत व्यक्ति की चिंतन के ही परिणाम हैं। पहले चिंतन करने वाला मानव या व्यक्ति अस्तित्व में आया, अतः व्यक्ति अस्तित्व ही प्रमुख है, जबकि विचार या सिद्धांत गौण। उनके विचार से हर व्यक्ति को

अपना सिद्धांत स्वयं खोजना या बनाना चाहिए, दूसरों के द्वारा प्रतिपादित या निर्मित सिद्धांतों को स्वीकार करना उसके लिए आवश्यक नहीं। इसी दृष्टिकोण के कारण इनके लिए सभी परंपरागत (Traditional), सामाजिक (Social), नैतिक(Moral), शास्त्रीय(Classical) एवं वैज्ञानिक (Scientific) सिद्धांत अमान्य या अव्यावहारिक सिद्ध हो जाते हैं। उनका मानना है कि यदि हम दुख एवं मृत्यु की अनिवार्यता को स्वीकार कर लें तो भय कहाँ रह जाता है।

अस्तित्ववादी के अनुसार दुख और अवसाद को जीवन के अनिवार्य एवं काम्य तत्त्वों के रूप में स्वीकार करना चाहिए। परिस्थितियों को स्वीकार करना या न करना व्यक्ति की ही इच्छा पर निर्भर है। इनके अनुसार व्यक्ति को अपनी स्थिति का बोध दु:ख या त्रास की स्थिति में ही होता है, अतः उस स्थिति का स्वागत करने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। दास्ताएवस्की ने कहा था- ''यदि ईश्वर के अस्तित्व को मिटा दें तो फिर सब कुछ (करना) संभव है।''

संसार को स्वयं कि अभिव्यक्ति कभी नहीं समझना चाहिए, ना ही संसार को एक मात्र साधन या आत्म परिचय को प्राप्त करने का उपाय। इससे यही आशय स्पष्ट होता हैं कि जीवन का अर्थ स्थिर नहीं है, पर इसका कोई छोर भी नहीं हैं। हम जीवन के अर्थ तीन तरीके से ढूंढ सकते हैं:

(१) कर्म के माध्यम से

(२) किसी के या किसी वस्तु के मूल्य को अनुभव करके

(३) पीड़ा से

पहले तरीके को पूर्ण करना अत्यंत लाभदायक है। दूसरे और तीसरे तरीको में पुनः विस्तार कि आवश्यकता है । दूसरा तरीका जिससे जीवन में अर्थ का प्रवेश होता है वो अनुभवों से ही प्राप्त होता है, यह शिक्षा हमें प्रकृति से हो सकती हैं या फिर संस्कृति से या फिर किसी को अनुभव करके भी यानि प्रेम के द्वारा। प्रेम ही वह एक ढाल हैं जिससे मनुष्य के अंतरात्मिक व्यक्तित्व को सींचा जा सकता है। कोई भी किसी मनुष्य को तब तक नहीं जान सकता या समझ सकता जब तक प्रेम भाव कि उत्पत्ति नहीं होती। प्रेम को अध्यात्मिक रूप के अनुसार अगर ढाला जाए तो उससे वह दूसरे मनुष्य के महत्वपूर्ण लक्षण को देख सकता है, वही मनुष्य जिससे वह प्रेम करता हो। इससे भी अधिक वह अपने सामर्थ्य कि पुष्टि हो जाती है जो आत्म परिचय के राह पर बहुत बड़ा कदम है। इससे दोनों व्यक्ति अपने सामर्थ्य को पहचान जाते हैं। तीसरा तरीका जो मनुष्य को अपने जीवन के अर्थ को खोजने में सहायता करता हैं वह है पीडा। मनुष्य जब भी असहाय या ऐसी परिस्थिति से गुज़रता है जिसका परिणाम उनके हाथ में न हो जैसे: कोई लाइलाज बीमारी, उसी वक्त एक इंसान को अपनी पहचान को बोध करने का भरपूर मौका मिलता है, अर्थात कष्ट को झेलकर जीवन का सबसे बड़ा अर्थ पाने का अवसर मिलता है। इसमें कष्ट कि तरफ व्यक्ति का नज़रिया भी पीडा को झेलने की ताकत देता है।

इस परिप्रेक्ष्य से प्रख्यात साहित्यकार एवं दार्शनिक जयां पाल सार्त्र (Jean paul Sartre) का नाम भी जुडा हुआ है। अतः शिक्षा का यह दायित्व है कि वे इन प्रक्रियाओं का अध्ययन करे, जिनके द्वारा व्यक्ति अपने जीवन एवं परिवेश को अर्थ प्रदान करते हैं।

स्व की अवधारणा का मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ (The psychological basis of self):

मनोवैज्ञानिक कार्ल रोजर्स (Carl Rogers) और इब्राहीम मास्लो (Abraham Maslow) स्वयं अवधारणा की धारणा स्थापित करने के लिए जाने जाते है। रोजर्स के मुताबिक, हर कोई 'आदर्श स्व (Ideal Self)' तक पहुंचने के लिए प्रयासरत करते है। रोजर्स भी मानसिक रूप से स्वस्थ लोगों को सक्रिय रूप से दूसरों की अपेक्षाओं के द्वारा बनाई गई भूमिकाओं से दूर ले जाते हैं, और इसके बजाय सत्यापन के लिए स्वयं के भीतर धारणा करती है।वे वैध के रूप में अपने स्वयं के अनुभवों को स्वीकार करने से डर रहे हैं , ताकि वे खुद को बचाने के लिए या दूसरों से अनुमोदन जीतने के लिए , या तो उन्हें बिगाड़ने के लिए प्रयास करे।

जॉन टर्नर (John Turner) द्वारा विकसित आत्म वर्गीकरण सिद्धांत (Self Classification Theory) स्वयं अवधारणा में कम से कम दो "स्तर " के होते हैं: एक व्यक्तिगत पहचान (Individual Idenetity) और एक सामाजिक (Social Identitiy)। दूसरे शब्दों में, एक आत्म - मूल्यांकन (Self-Evaluation) आत्म विचारों और कैसे वे अनुभव पर निर्भर करते है। आत्म-धारणा (Self- Concept) व्यक्तिगत और सामाजिक पहचान के बीच तेजी से वैकल्पिक कर सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

4. वे कौन से तीन तरीकें हैं जिनके द्वारा हम जीवन के अर्थ को समझ सकते हैं? What are the three methods with the help of which we can search the meaning of life?
5. स्व की अवधारणा का मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ स्पष्ट करें। Explain the psychological basis of self.

2.5 स्वयं के बारे में एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण (Cultural perspective towards self)

मनुष्य सामाजिक प्राणी (Social animal) है और समूहों में रहता है। विश्व के समस्त जीवधारियों में केवल वही संस्कृति का निर्माता है। संस्कृति प्रकृतिप्रदत्त नहीं होती। यह सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा अर्जित होती है। अत: संस्कृति उन संस्कारों से संबद्ध होती है, जो हमारी वंशपंरपरा तथा सामाजिक विरासत के संरक्षण के साधन है। इनके माध्यम से सामाजिक व्यवहार (Social behaviour) की विशिष्टताओं का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में निगमन होता है। निगमन के इस प्रक्रिया में ही संस्कृति का

अस्तित्व निहित होता है और इसकी संचयी प्रवृत्ति इसके विकास को गति प्रदान करती है, जिससे नवीन आदर्श जन्म लेते हैं। इन आदर्शों द्वारा बाह्य क्रियाओं और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोणों का समानयन होता है तथा सामाजिक संरचना और वैयक्तिक जीवनपद्धति का व्यवस्थापन होता रहता है। संस्कृति यद्यपि किसी देश या कालविशेष की उपज नहीं होती, यह एक शाश्वत प्रक्रिया है, तथापि किसी क्षेत्रविशेष में किसी काल में इसका जो स्वरूप प्रकट होता है उसे एक विशिष्ट नाम से अभिहित किया जाता है। यह अभिधा काल, दर्शन, क्षेत्र, समुदाय अथवा सत्ता से संबद्ध होती है।

संस्कृति स्व (Self) के निर्माण में महती भूमिका अदा करती है। संस्कृति हमारे जीने और सोचने की विधि में हमारी अन्तःस्थ प्रकृति की अभिव्यक्ति है। यह हमारे साहित्य में, धार्मिक कार्यों में, मनोरंजन और आनन्द प्राप्त करने के तरीकों में भी सहजतःदेखी जा सकती हैं। सांस्कृतिक विकास (Cultural development) एक ऐतिहासिक प्रक्रिया है। हमारे पूर्वजों ने बहुत सी बातें अपने पुरखों से सीखी है। समय के साथ उन्होंने अपने अनुभवों से उसमें और वृद्धि की। जो अनावश्यक था, उसको उन्होंने छोड़ दिया। हमने भी अपने पूर्वजों से बहुत कुछ सीखा। जैसे-जैसे समय बीतता है, हम उनमें नए विचार, नई भावनाएँ जोड़ते चले जाते हैं और इसी प्रकार जो हम उपयोगी नहीं समझते उसे छोड़ते जाते हैं। इस प्रकार संस्कृति एक पीढी से दूसरी पीढी तक हस्तान्तरिक होती जाती है। जो संस्कृति हम अपने पूर्वजों से प्राप्त करते हैं उसे सांस्कृतिक विरासत कहते हैं। यह विरासत कई स्तरों पर विद्यमान होती है। मानवता ने सम्पूर्ण रूप में जिस संस्कृति को विरासत के रूप में अपनाया उसे 'मानवता की विरासत' कहते हैं। एक राष्ट्र (National) भी संस्कृति को विरासत के रूप में प्राप्त करता है जिसे 'राष्ट्रीय सांस्कृतिक विरासत' कहते हैं। सांस्कृतिक विरासत में वे सभी पक्ष या मूल्य सम्मिलित हैं जो मनुष्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी अपने पूर्वजों से प्राप्त हुए हैं। वे मूल्य पूजे जाते हैं, संरक्षित किए जाते हैं और अटूट निरन्तरता से सुरक्षित रखे जाते हैं और यही किसी भी व्यक्ति के स्व के निर्माण में सहायक सिद्ध होती हैं।

संस्कृतियां व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करती है। क्रच, क्रचफिल्ड तथा बैलेशी (1962) के अनुसार "सांस्कृतिक वातावरण (Cultural Environment) में भिन्नता के कारण लोगों के आचार-विचार में भी भिन्नता आती है। जिस संस्कृति की जैसी मान्यता तथा विचारधारा होगी, उसमें पोषित लोगों में उसी प्रकार की गुणों का विकास भी होता है।"व्यक्तित्व संस्कृति का दर्पण होता है। अलग-अलग राष्ट्रों के व्यक्ति का व्यक्तित्व भिन्न- भिन्न होता है। यही नहीं एक ही राष्ट्र की विभिन्न उपसंस्कृतियाँ किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को अलग-अलग ढंग से प्रभावित करती है। ब्रानफेनब्रेनर (1970) ने अमेरिका और रूस के बच्चों के पालन पोषण सम्बन्ध कार्य प्रणाली का अध्ययन किया तथा पाया कि रूस के बच्चों की फिजिकल हैण्डलिंग अमेरिका के बच्चों की तुलना में अधिक होती है। सांस्कृतिक मान्यताओं का ही परिणाम है कि कुछ समाज के व्यक्ति अधिक धर्मान्ध, शांत और विनम्र होते हैं जबकि कुछ समाज के सदस्य ईर्ष्यालु एवं आक्रामक होते हैं (मीड, 1937)। डेवोस एवं हिपलर (1969) का मानना है कि सांस्कृतिक तत्वों का प्रभाव बालक के व्यक्तित्व विकास पर बड़े वचित्र ढंग से पड़ता है।

अभ्यास प्रश्न

6. स्वयं के बारे में एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण से आप क्या समझते हैं?
   What do you understand by Cultural perspective towards self?
7. What do you understand by "heredity of humanism"?
   'मानवता की विरासत' से आप क्या समझते हैं?
8. Do you think that cultural environment is responsible for behaviour?
   क्या सांस्कृतिक वातावरण में भिन्नता की वज़ह से आचार विचार में भी कोई भिन्नता होती है?

2.6 शिक्षक के रूप में स्वयं के बारे में एक दार्शिनक दृष्टिकोण (Philosophical perspective towards self in role of a teacher)

हमारे धर्म शास्त्रों में माता-पिता आचार्य तीनों को बालक के जीवन निर्माण में महत्वपूर्ण माना है। माँ-बाप उसका पालन-पोषण संवर्धन करते हैं तो आचार्य उसके बौद्धिक, आत्मिक, चारित्रिक गुणों का विकास करता है, उसे जीवन और संसार की शिक्षा देता है। उसकी चेतना को जागरुक बनाता है। इसी लिए हमारे यहाँ आचार्य गुरु को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, उसे पूजनीय माना गया है। आचार्य के शिक्षण, उसके जीवन व्यवहार, चरित्र से ही बालक जीवन जीने का ढंग सीखता है, आचार्य की महती प्रतिष्ठा हमारे यहाँ इसी लिए हुई।

भारत देश गुरुकुल परम्परा के प्रति समर्पित रहा है। यहाँ के वशिष्ठ,संदीपन धौम्य आदि के गुरुकुलों से राम, कृष्ण, सुदामा जैसे शिष्य निकले, जिन्होंने अपना जन्म तो सार्थक किया ही, साथ ही विश्व वसुधा को सद्ज्ञान का आलोक प्रदान किया और इतिहास को भी धन्य बनाया। भारत कभी जगद्गुरु हुआ करता था। इस देश को जगद्गुरु बनाने वाला एक ही तत्त्व है और उसका नाम है- शिक्षक, गुरु, आचार्य। भारत में शिक्षक को सर्वोत्तम स्थान देते हुए उन्हें 'त्रिदेव' की संज्ञा देते हुए कहा गया है कि – **'गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः, गुरुर्देवो महेश्वरः'** अर्थात् गुरु (शिक्षक) ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर है। इसी प्रकार अथर्ववेद के 'ब्रह्मचर्य सूक्त' में आचार्य (शिक्षक) के सम्बन्ध में कहा गया है कि **'आचार्यो मृत्युर्वरुणः, सोम ओषधयः-प्रायः।**' अर्थात् गुरू पुराने संस्कारों को नष्ट करके नवीन संस्कार डालता है और बालक को नवीन जीवन प्रदान करता है, इसलिए वह मृत्युर्वरुण (नया जन्म देने वाला) कहा गया है। गुरु मन के कुसंस्कारों को धो देता है इसलिए उसे वरुण कहा गया है। वह शान्ति के मार्ग पर ले जाता है। इसलिए सोम (चन्द्रमा) के समान तथा कठिनाई रूपी रोगों से दूर करने के कारण उसे औषधि की संज्ञा दी गयी।

गुरु शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा से हुई है और इसका गहन आध्यात्मिक अर्थ है । इसके दो व्यंजन (अक्षर) गु और रु के अर्थ इस प्रकार से हैं। 'गु' शब्द का अर्थ है अंधकार (अज्ञान) और 'रु' शब्द

का अर्थ है प्रकाश ज्ञान। अज्ञान को नष्ट करने वाला जो ब्रह्म रूप प्रकाश है, वह गुरु है। आश्रमों में गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह होता रहा है। भारतीय संस्कृति में गुरु को अत्यधिक सम्मानित स्थान प्राप्त है। भारतीय इतिहास में गुरु की भूमिका समाज को सुधार की ओर ले जाने वाले मार्गदर्शक के रूप में होने के साथ क्रान्ति को दिशा दिखाने वाली भी रही है। भारतीय संस्कृति में गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊपर माना गया है।

शिक्षक का परम दायित्व है कि वह स्व उन्नति हेतु ज्ञान को आधार बनाए। ज्ञान द्वारा स्व उन्नति होने से भिन्न – भिन्न शक्तियों का विकास होता है तथा उत्तम एवं श्रेष्ठ आत्म सम्मान की रचना होती है। ज्ञान की गहराई से सभी भटकाव एवं अज्ञानता समाप्त हो जाती है शिक्षक का दायित्व है कि वो अपने विचारों पर मंथन करे। मथन से शिक्षक के व्यक्तित्व मवं बड़ा बदलाव आ सकता है। सीमित राय या नकारात्मक विचार समाप्त हो सकते हैं। अशुद्ध विचारों को दबाने के बजाय उन्हें स्वीकार कर उनसे मुक्ति पाना सर्वथा सही हो सकता है । यदि अध्यापक के रूप में हम अपने दैनिक जीवन का केवल 15 मिनट वास्तविकता की समझ को गहरा करने में व्यतीत करते हैं तो यह कौशल धीरे- धीरे एक योग्यता एवं आतंरिक गुण में विकसित हो जायेगी। स्व को पहचानने के निम्न चरण हो सकते हैं-

१. आत्म निरीक्षण और आत्मचिंतन

२. आतंरिक ईमानदारी और अपने संकल्पों एवं कमजोरियों को स्वीकार करना

३. स्वयं से बिना शर्त प्यार करना तथा अतीत के संस्कारों से स्वयं को मुक्त करना

४. स्व- सशक्तिकरण

अभ्यास प्रश्न

9. Explain the importance of teacher in respect of India.

   भारत के सन्दर्भ में शिक्षक के महत्व को प्रतिपादित करें ।

10. Explain the genesis of Word “Guru”

    गुरु शब्द की व्युत्पत्ति को समझाएं ।

11. What are the steps of identifying self?

    स्व को पहचानने के कौन- कौन से चरण हो सकते हैं?

2.7 शिक्षक के रूप में स्वयं के बारे में एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण (Cultural perspective towards self in role of a teacher)

भारत के विद्यालयों को छात्रों के सीखने के उत्कृष्टता केंद्रों में बदलने के स्वप्न को सच करने के लिए आवश्यक है कि शिक्षकअपने संपूर्ण कार्य जीवन में अपने कौशलों और ज्ञान का नवीकरण और अद्यतन करने का निजी दायित्व लें, क्योंकि वे ही इस आंदोलन के केंद्र-बिंदु हैं। व्यक्तिगत विकास आपके कौशलों और ज्ञान को विकसित करने, आकार देने और सुधार करने की जीवन-पर्यंत प्रक्रिया है ताकि विद्यालय की कार्य क्षेत्र में अधिकतम प्रभावकारिता और सकारात्मक आत्म-अवधारणा का विकास सुनिश्चित किया जा सके। व्यक्तिगत विकास का मतलब आवश्यक रूप से ऊर्ध्वगामी गति (यानी, पदोन्नति) ही नहीं होता। बल्कि, इसका मतलब अपने विद्यालय का नेतृत्व करने में अपने कार्य-प्रदर्शन का सुधार करने में आपको सक्षम करना है।

व्यक्तिगत विकास के लिए समय निकालना व्यस्त शिक्षकों के लिए चुनौती है। इसलिए यह इकाई आपके कार्यक्रम में जगह बनाने में आपको सक्षम करने के लिए दो महत्वपूर्ण मुख्य कौशलों पर ध्यान केंद्रित करती है: समय का प्रबंधन और प्रतिनिधित्व फिर यह इस बात की खोजबीन करेगी कि आपकी हरकतों को उद्देश्यपूर्ण (एक व्यक्तिगत विकास योजना के उपयोग से) और प्रभावी (SMART उद्देश्यों के उपयोग से) बनाते हुए व्यक्तिगत विकास के लिए निकाले गए आपके समय का सदुपयोग कैसे करना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में यह बात वर्णित है कि " शिक्षा व्यवस्था उस समाज से अलग होकर काम नहीं कर सकती जिसका वह एक भाग है। समाज में फैले जातिगत, आर्थिक तथा लैंगिक पदानुक्रम, सांस्कृतिक विविधता तथा असमान विकास से... शिक्षा की प्राप्ति और विद्यालयों में बच्चों की सहभागिता प्रभावित होती रहती है। .....विभिन्न सामाजिक व आर्थिक समुदायों के बीच जो गहरी विषमता दिखाई देती है उससे यह प्रतिबिम्बित होता है कि....विद्यालयी व्यवस्था स्वयं में कई स्तरों पर बंटी हुयी है और बच्चों को असाधारण रूप से अलग- अलग शैक्षिक अनुभव देती है। असमान....संबंध न केवल वर्चस्व को बढ़ावा देते हैं, अपितु ...तनाव भी पैदा करते हैं तथा मानवीय क्षमताओं के पूर्ण विकास की स्वतंत्रता में बाधा भी पहुंचाते हैं।" यह सम्पूर्ण परिदृश्य इस तथ्य को उल्लिखित करता है कि शिक्षक एक सांस्कृतिक कार्यवाही को अंजाम देता है।

इन सब के अतिरिक्त हम स्व प्रगति के निम्न 10 सिद्धांतों पर बल देकर अपने प्रगति को सुनिश्चित कर सकते हैं-

1. अपने कार्य अथवा व्यवसाय में निष्पक्ष, ईमानदार, स्पष्ट और गंभीर होने से हमारी मन, वाणी और कर्म में समानता आती है।
2. दूसरों के साथ हमारा व्यवहार झूठे विश्वास, कड़वाहट, झूठी शान तथा सामाजिक, आर्थिक, लैंगिक, जातीय आदि शोषण की भावना के पूर्वाग्रह से पूर्णतः मुक्त होना चाहिए।

3. हमारे समस्त कार्यों का मूल सिद्धांत सार्वभौमिक प्रेम , सहानुभूति, सद्भाव सहयोग, शान्ति और बेहतरी की बावना पर होनी चाहिए
4. अपने विवादों को आपसी बातचीत, विचार-विमर्श एवं कानूनी प्रक्रियाओं के द्वारा हे निपटाना चाहिए
5. अपने विद्यार्थियों को स्नेह पूर्वक पढ़ाना चाहिए तथा मानवता के लक्ष्यों की प्राप्ति कैसे की जाय इस हेतु उन्हें प्रेरित भी करना चाहिए।
6. अध्यापकीय एवं अध्ययन के कर्म में कभी भी आलस्य को स्थान नहीं देना चाहिए तथा इसे आनान्दित होकर करना चाहिए।
7. हमें प्रतिदिन अपने आत्मविकास के लिए कुछ समय आध्यात्मिक और नैतिक विकास के लिए आत्म निरीक्षण, ध्यानाभ्यास एवं अध्ययन के लिए अवश्य देना चाहिए।
8. शिक्षक के लिए विद्यार्थियों का हित सर्वोच्च होता है, शिक्षक को विद्यार्थियों के हित के लिए जो भी आवश्यक है करना चाहिए।
9. शिक्षक को अध्यापन कर्म का आनंद लेना चाहिए।
10. शिक्षकों को सदा गुणग्राही बनकर आत्मिक शान्ति की स्थिति का अनुभव करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

12. Explain the ten theories of sel- development.
    स्व- प्रगति के 10 सिद्धांतों की व्याख्या करें।
13. What do you understand by Cultural perspective towards self in role of a teacher?
    शिक्षक के रूप में स्वयं के बारे में एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण से आप क्या समझते हैं?

2.8 सारांश

विकास की प्रक्रिया में मनुष्य अपने आप अर्थात स्वयं को खोजने की कोशिश करता रहता है। व्यक्तित्व के गतिशील (dynamic) होने की कारण स्वयं को खोजने एवं जानने की प्रक्रिया भी आजीवन चलती रहती है। जब हम शिक्षक के सन्दर्भ में स्वयं को जानने, समझने या फिर पहचानने की चर्चा करते हैं तो मामला और भी गूढ़ और मुश्किल हो जाता है क्योंकि शिक्षक तो विद्यार्थियों को स्वयं को पहचानने और सफलता के नए आयाम छूने के लिए प्रेरित करने वाला होता है। व्यक्ति स्वयं के बारे में जो सोचता है तथा अपने बारे में जो अवधारणा विकसित करता है, उसे 'स्व' की अवधारणा (Concept of Self) कहते है। यह दो रूपों में हो सकता है, 'वास्तविक स्व'(Real Self) एवं ;आदर्शात्मक स्व' (Ideal Self)। 'स्व' के विकास में सामाजिकीकरण (socialisation) की अहम भूमिका होती है। बच्चों के प्रारंभिक 'स्व' के

स्वरुप पर माता-पिता तथा सहोदरों (siblings) का अधिक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि वे प्रारम्भिक वर्षों में उन्हीं के सम्पर्क में सर्वाधिक रहते है। स्व के सन्दर्भ में जो सबसे महत्वपूर्ण विचार या परिपेक्ष्य है वह है अस्तित्ववादी परिप्रेक्ष्य (Existential Perspective)। यह परिप्रेक्ष्य व्यक्ति के विचारों एवं व्यवहार पर बल देता है। इसकी विशेष रुचि व्यक्ति के स्व में, स्व के मूल्यांकन में, भावनाओं में एवं संवेदनाओं के अध्ययन में है । अस्तित्ववादी विचार या प्रत्यय की अपेक्षा व्यक्ति के अस्तित्व (Existence) को अधिक महत्त्व देते हैं। इनके अनुसार सारे विचार या सिद्धांत व्यक्ति की चिंतन के ही परिणाम हैं। मनोवैज्ञानिक कार्ल रोजर्स (Carl Rogers) और इब्राहीम मास्लो (Abraham Maslow) स्वयं अवधारणा की धारणा स्थापित करने के लिए जाने जाते है। रोजर्स के मुताबिक, हर कोई 'आदर्श स्व (Ideal Self)' तक पहुंचने के लिए प्रयासरत करते है। रोजर्स भी मानसिक रूप से स्वस्थ लोगों को सक्रिय रूप से दूसरों की अपेक्षाओं के द्वारा बनाई गई भूमिकाओं से दूर ले जाते हैं, और इसके बजाय सत्यापन के लिए स्वयं के भीतर धारणा करती है ।

मनुष्य सामाजिक प्राणी (Social animal) है और समूहों में रहता है। विश्व के समस्त जीवधारियों में केवल वही संस्कृति का निर्माता है। संस्कृति प्रकृतिप्रदत्त नहीं होती। यह सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा अर्जित होती है। अत: संस्कृति उन संस्कारों से संबद्ध होती है, जो हमारी वंशपंरपरा तथा सामाजिक विरासत के संरक्षण के साधन है। भारत में शिक्षक को सर्वोत्तम स्थान देते हुए उन्हें 'त्रिदेव' की संज्ञा देते हुए कहा गया है कि – **'गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु:, गुरुर्देवो महेश्वर:'** अर्थात् गुरु (शिक्षक) ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर है। इसी प्रकार अथर्ववेद के 'ब्रह्मचर्य सूक्त' में आचार्य (शिक्षक) के सम्बन्ध में कहा गया है कि **'आचार्यो मृत्युर्वरुण:, सोम ओषधय:-प्राय:।**' अर्थात् गुरू पुराने संस्कारों को नष्ट करके नवीन संस्कार डालता है और बालक को नवीन जीवन प्रदान करता है, इसलिए वह मृत्युर्वरुण (नया जन्म देने वाला) कहा गया है। गुरु मन के कुसंस्कारों को धो देता है इसलिए उसे वरुण कहा गया है। वह शान्ति के मार्ग पर ले जाता है। इसलिए सोम (चन्द्रमा) के समान तथा कठिनाई रूपी रोगों से दूर करने के कारण उसे औषधि की संज्ञा दी गयी।

2.9 शब्दावली (Glossary)

1. **'स्व' की अवधारणा (Concept of Self):** व्यक्ति स्वयं के बारे में जो सोचता है तथा अपने बारे में जो अवधारणा विकसित करता है, उसे 'स्व' की अवधारणा (Concept of Self) कहते है।

2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आचार्य, नंदकिशोर (1997) संस्कृति का व्याकरण , वाग्देवी पाकेट बुक्स, बीकानेर।
2. आचार्य, परमेश (2000) देशज शिक्षा औपनिवेशिक विरासत और जातीय विकल्प , ग्रन्थ शिल्पी, लक्ष्मीनगर , नई दिल्ली ।
3. आचार्य, राममूर्ति (1990) शिक्षा, संस्कृति और समाज; श्रम भारती , खादीग्राम बिहार ।
4. जोशी , प्रो. पूरण चन्द्र (2001) स्वप्न और यथार्थ; राजकमल प्रकाशन, दरियागंज , नई दिल्ली।
5. पटनायक, किशन (2001) विकल्पहीन नहीं है दुनिया; राजकमल प्रकाशन ; नई दिल्ली।
6. Huitt, W. (2011). "Self and self-views". Educational Psychology Interactive. Valdosta, GA: Valdosta State University.

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. What do you understand by Cultural perspective towards self in role of a teacher?
   शिक्षक के रूप में स्वयं के बारे में एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण से आप क्या समझते हैं?
2. Explain the ten theories of sel- development.
   स्व- प्रगति के 10 सिद्धांतों की व्याख्या करें ।
3. What are the steps of identifying self?
   स्व को पहचानने के कौन- कौन से चरण हो सकते हैं?
4. What is the importance of hereditary and environmental factors in the development of personality?
   व्यक्तित्व के विकास में अनुवांशिक एवं परिवेशीय कारकों का क्या महत्व है?
5. Do you think that cultural environment is responsible for behaviour?
   क्या सांस्कृतिक वातावरण में भिन्नता की वज़ह से आचार विचार में भी कोई भिन्नता होती है?

इकाई 4 - एक शिक्षक के रूप में प्रभावी श्रवण कौशल स्वीकारिताएं, सकारात्मकता को विकसित करना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 श्रवण कौशल का अर्थ
4.4 श्रवण प्रक्रिया के आधार
4.5 श्रवण कौशल विकास की विधियाँ
4.6 श्रवण कौशल में दक्षता हेतु प्रमुख क्रियाएँ
4.7 श्रवण कौशल विकास आधारित शिक्षण उद्देश्य
4.8 सारांश
4.9 शब्दावली
4.10 निबंधात्मक प्रश्न
4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.1 प्रस्तावना

भाषा एक कला विषय है। भाषा को दूसरी कलाओं की भांति सीखा जाता है। सतत् अभ्यास में इसमें प्रवीणता प्राप्त की जाती है। जिस प्रकार दूसरी कलाओं को सीखने के लिए अनेक साधनों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भाषा सीखने के लिए भी साधन आवश्यक होते हैं। यहां साधन शब्द अभ्यास का पर्याय है। कला की साधना अन्ततः आदत बन जाती है। इसी प्रकार भाषा बोलने वाले व्यक्ति को स्कूल में पढ़े व्याकरण के नियमों का ज्ञान चाहे न हो परन्तु बोलते समय उसके मुख से स्वतः ही शुद्ध भाषा ही निकलेगी क्योंकि यह उसकी आदत में शामिल है। अतः भाषा ज्ञानार्जन में निपुणता प्राप्त करने की आवश्यकता होती है। श्री एस0के0 देश पाण्डे के विचारानुसार ''भाषा सीखने वाले को इन चारों कौशलों में दक्ष बनना होगा - जैसे समझना, बोलना, पढ़ना और लिखना। इसलिए इन सभी योग्यताओं का विकास करना भाषा शिक्षण का सबसे बड़ा मूलमंत्र है। भाषा को सीखने के लिए चार आधारभूत घटक इसके चार कौशल है।

भाषा में निपुणता लाने के लिए केवल पढ़ना और लिखना ही काफी नही है। उससे पहले हमें सुनने और बोलने की कला में भी निपुणता प्राप्त करनी होगी। सुनना और बोलना अच्छी भाषा सीखने के आधार है। जिसके धरातल पर ही दूसरी कलाएं सीखी जाती हैं जैसे - लिखना, पढ़ना इत्यादि। इन कलाओं में दक्षता

प्राप्त करके ही व्यक्ति किसी भी प्रकार ज्ञानार्जन कर सकता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अवसरानुकूल बोलचाल सफलता की कुंजी है। अपनी मीठी वाणी, शिष्ट भाषा और वाक् चातुर्य से हम अनेक व्यक्तियों को अपना मित्र बना सकते हैं। भावभिव्यक्ति में तो वक्ता की अनुभूति के साथ-साथ श्रोता की अनुभूति का तादात्म्य स्थापित करने वाली वाणी की दक्षता का विशेष महत्व है। जब तक बालक में श्रवण की दक्षता का विकास नहीं होगा तब तक भाषा सीखने और सिखाने की प्रक्रिया नहीं चल सकती। इस अध्याय में हम श्रवण की दक्षता का विकास, श्रवण दोष के प्रमुख कारण एवं निवारण के उपाय इत्यादि की विस्तार से चर्चा करेंगे द्य

4.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप.

1. श्रवण की अवधारणा को समझ पाने में समर्थ होगा
2. श्रवण कौशलों में दक्ष बनना की समझ विकसित करने के पहलुओं को समझ पायेंगे
3. श्रवण की दक्षता का विकास की समझ विकसित करने के पहलुओं को समझ पायेंगे
4. शिक्षक के रूप में श्रवण कौशलों की समझ विकसित करने के पहलुओं को समझ पायेंगे

4.3 श्रवण कौशल का अर्थ

'श्रवण' शब्द 'श्रु' धातु से बना है, जिसका संबंध सुनने की विभिन्न क्रियाओ यथा ध्यानपूर्वक सनने, सीखने तथा मौखिक बातचीत करने इत्यादि से है। 'श्रवण' केवल ध्वनियों का सुनना मात्र नही है। श्रवण में किसी कथन को ध्यानपूर्वक सुनने, सुनी हुई बात पर विचार विमर्श करना तथा उसके बाद उस श्रव्य तथ्य पर अपना विचार रखना इत्यादि प्रक्रिया सम्मिलित हैं। श्रवण अंगेंजी के स्पेजमदपदह शब्द का पर्याय है। अंगेजी शब्द स्पेजमदपदह का किसी ध्वनि का कान तक पहुंचना मात्र है। जबकि स्पेजमदपदह को श्। च्तवबमेे व िप्दजमतचतमजंजपवदश् अर्थात अर्थ निष्पादन की प्रक्रिया कहा गया है।

मौखिक भाषा का प्रथम एवं महत्वपूर्ण कौशल है- श्रवण कौशल। किसी भी विषय को भली प्रकार सुनकर ही समझा जा सकता है। हम लोगों को इस बात का अहसास ही नहीं होता कि भाषा सीखने में श्रवण का कितना महत्व है। जन्म से ही अनेकानेक निरर्थक तथा सार्थक ध्वनियां बालक के कर्ण यंत्रों को तंरगित करती रहती है और इन्हीं के अनुकरण से वह बोलता सीखता है। यदि सार्थक ध्वनियां उसे कान में बार-बार न पडें। तो बालक गूंगा और बहरा हो जाए।

श्रवण कौशल की अवधारणा:-

बालक अपने जन्मकाल से ही कुछ सार्थक व निरर्थक ध्वनियां सुनने लगता है पर कुछ महीनों तक वे ध्वनियां उसके लिए सार्थक होने लगती है। बालक की अधिकांश भाषा शिक्षा उसकी श्रवण द्वारा गृहित

ध्वनियों पर ही आधारित होती है। श्रवण शक्ति के महत्व के लिए यह पौराणिक उदाहरण है कि वीर अभिमन्यु ने चक्रव्यूह भंग करने की शिक्षा अपनी माता के गर्भ में उस समय सीख ली थी जब अर्जुन अपनी पत्नी सुभद्रा को व्यूह भंग करने की विधि सुना रहे थे। डा0 माया मित्रा के विचारानुसार ''श्रवण कौशल से अभिप्राय यह है कि किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा उच्चारण की हुई ध्वनियों, शब्दों, भावों और विचारों को कानों में सुनकर अर्थ ग्रहण करने की क्रिया।'' बच्चों को इस योग्य बनाना कि वह कुशलतापूर्वक श्रवण कर सकें। एक शोधकर्ता के अनुसार मनुष्य अपनी दिनचर्या संप्रेषण व्यापार में लगाए जाने वाले समय का 35 प्रतिशत सुनने में 30 प्रतिशत बोलने में और शेष 25 प्रतिशत संयुक्त रूप से पठन व लेखन में लगता है। विद्यालय में भी विद्यार्थी लगभग अपना आधा समय सुनने में व्यतीत करता है। इसलिए श्रवण कौशल के विकास के लिए सुनियोजित प्रयास करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. श्रवण को स्पष्ट करें
2. श्रवण कौशल के विकास से आप क्या समझते हैं
3. श्रवण कौशल के विकास का क्या महत्व है

4.4 श्रवण प्रक्रिया के आधार

जब हम बालक मे श्रवण कौशल के विकास की बात करते है तो हमारे आशय केवल यह नही होता कि बालक ध्वनियों के सुनने में पारंगत हो वरन वह जो कुछ सुन, उसे समझे, अर्थ ग्रहण करे उसे याद रखें। उसके अनुसार कार्य करें अथवा उस पर अपनी प्रतिक्रिया रखें। श्रवण की इन अपेक्षाओं के आधार पर श्रवण प्रक्रिंया के निम्नलिखित प्रकार है:-

- अवधानात्मक श्रवण
- रसात्मक श्रवण
- विश्लेषणात्मक श्रवण

i. अवधानात्मक श्रवण - अवधानात्मक श्रवण में श्रुतसामग्री को ध्यानपूर्वक सुनकर उसके मुख्य तत्वों, विचारों, आदेशो-निर्दशों तथा वार्तालाप के सूत्रों आदि को ग्रहण करना इत्यादि क्रियांए शामिल होती हैं।

ii. रसात्मक श्रवण - उचित एवं अनुतान, उपयुक्त गति, भाव-भंगिमा एवं लहिजे के साथ सुनाई गई अथवा पढ़ी गई सामग्री में श्रोता द्वारा आनंदानुभूति करना श्रवण कहलाता है।

iii. विश्लेषणात्मक श्रवण - इसमें श्रोता श्रुत सामग्री में प्रस्तुत विचारों, भावों इत्यादि पर तुलनात्मक दृष्टि के विचार करता हुआ अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर उनका मूल्यांकन करता है तथा

निष्कर्ष निकालता है। इसलिए विश्लेषणात्मक श्रवण के विकास के प्रति अधिक सजग रहने की आवश्यकता है।

श्रवण कौशल के विकास आवश्यकता

मौखिक भाषा सुनकर उसके अर्थ एवं भाव समझने की क्रिया में निपुण करना ही श्रवण कौशल का विकास है, और इसके लिए आवश्यक है कि उनमें सुनने की आवश्यक तत्वों का विकास किया जाय। यह कार्य एक दो दिन, माह अथवा वर्षो में नही किया जा सकता, इसके लिए सतत प्रयास की आवश्यकता होती है। जहां तक मातृभाषा के सन्दर्भ में सुनने के लिए कौशल के विकास का प्रश्न है। इसका कुछ विकास तो बच्चों में विद्यालयों मे प्रवेश लेने से पहले हो चुका होता है। परन्तु उनकी निश्चित सीमा होती है। विद्यालयों में बच्चों को मातृ भाषा के सर्वमान्य रूप को सुनने और सुनकर उसका अर्थ एवं भाव समझने में दक्ष किया जाता है। इसके लिए हमें विद्यालयी शिक्षा में भिन्न-भिन्न कार्य करने पड़ते हैं।

श्रवण कौशल का महत्व

अधिगम प्रक्रिया में पठन कौशल की अपेक्षा श्रवण कौशल का अधिक योगदान है। प्राचीन काल में शिष्य गुरू से श्रवण कर पाठ को कण्ठस्थ करते थे। आज भी यह प्रक्रिया जारी है, किन्तु इसके साथ ही रेडियो, टेलीविजन, वीडियो आदि का भी अधिक प्रभावशाली योगदान है। श्रवण कौशल का अनेक साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में बहुत महत्व है।

अभ्यास प्रश्न

4. वे कौन से तीन आधार हैं जिनके द्वारा हम श्रवण को समझ सकते हैं
5. श्रवण कौशल के विकास आवश्यकता को स्पष्ट करें
6. श्रवण कौशल के महत्व को स्पष्ट करें

4.5 श्रवण कौशल विकास की विधियां

वैसे तो हर कक्षा में छात्र लगातार सुनता रहता है, परन्तु अध्यापक के पूर्व नियोजित प्रयास द्वारा उसे अच्छा श्रोता बनाया जा सकता है।

i. प्रथम साधन है अध्यापक की दृष्टि। विद्यार्थी मनोयोगपूर्वक सुन रहा है अथवा नही, वह अच्छे श्रोता के शिष्टाचार का पालन कर रहा है अथवा नही, उक्त दोनों स्थितियों को शिक्षक अपनी पैनी दृष्टि से देख सकता है तथा छात्रों को उचित निर्देश दे सकता है।

ii. श्रुत सामग्री का अर्थ ग्रहण छात्र कर रहे हैं या नहीं, इसका पता लगाने तथा अर्थ ग्रहण की योग्यता का विकास करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रश्न सहायक होते है। केन्द्रीय भाव से संबद्ध प्रश्न, सुनी हुई विषयवस्तु के बारे में विश्लेषणात्मक प्रश्न, विषय वस्तु में अन्तर्निहित व्यंग्य, विनोद अथवा अनकहे कथन के बारे में प्रश्न, प्रयुक्त शब्दों तथा मुहावरों के अर्थ संबंधी प्रश्न या सारांश संबंधी प्रश्न पूछ कर श्रवण कौशल का विकास भी किया जा सकता है तथा साथ-साथ योग्यता

सम्पादन का आकलन भी किया जा सकता है। ध्वनि भेद, स्वराघात, बलाघात, अनुतान आदि के बारे में छात्र का ध्यान आकृष्ट करके उक्त भाषायी तत्वों के प्रभावों को ह्रदयंगम करवाया जा सकता है।

विशेष रूप से श्रवण-कौशल सिखाने के लिए निम्नांकित शैक्षिक क्रियाए सहायक हो सकती है:-

1. विभिन्न स्वरों तथा व्यंजनों की उच्चारण का मात्रकाल, उच्चारण स्थान आदि का ज्ञान दिया जाये।
2. विशिष्ट-व्यजंन ध्वनियों को शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त, निरन्तर दो बार, घोष-अघोष, अल्प प्राण-महाप्राण, ह्रस्व दीर्घ मात्रा आदि की स्थिति में रखकर सुनने का अभ्यास दिया जाये।
3. अध्यापक द्वारा सस्वर, भावानुकूल वाचन किया जाये तथा यथावसर कविता, नाटक, संवाद, कहानी आदि का सस्वर वाचन अथवा कथन किया जाये।
4. विभिन्न मनोभवों-हर्ष, क्रोध, आश्चर्य, घृणा, करूणा, व्यंग्य आदि पर आधारित विषय सामग्री कक्षा में यदा-कदा सुनाई जाये।

इसके अलावा अनेक पाठ्य सहगामी क्रियाए, यथा-नाटक, भाषण, वाद-विवाद, कवितापाठ, अंत्याक्षरी भी श्रवण कौशल का विकास करने में सहायक हो सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

7. श्रवण कौशल विकास की विधियां से आप क्या समझते हैं

4.6 श्रवण कौशल में दक्षता हेतु प्रमुख क्रियाए

श्रवण कौशल की शिक्षा के अन्तर्गत सुनने या श्रवण का अर्थ है - बोधपूर्वक श्रवण। केवन ध्वनि-संकेतों का श्रवण ही, सुनने की योग्यताओं के अन्तर्गत नहीं है, वरन् ध्वनि-संकेतों के श्रवण के साथ-साथ उनका अर्थग्रहण भी सुनने की योग्यता का महत्वपूर्ण अंग है।

सुनने, बोलने की विविध प्रकार की सामग्री लगभग तीन स्थितियों में उपलब्ध हो सकती है -

(क) कक्षा-स्थिति - कक्षा में बोले गये शब्दों को सुनकर उनका अर्थग्रहण करना।

(ख) कक्षेत्तर स्थिति- जन सामान्य द्वारा बोले गये शब्दों को सुनकर उनका अथग्रहण करना।

(ग) आकाशवाणी प्रसारण- आकाशवाणी द्वारा बोले गये शब्दों को सुनकर उनका अर्थ ग्रहण करना।

इस स्तर पर सामग्री लगभग इस प्रकार हो सकती है -

1.लिखित सामग्री - लिखित सामग्री इस प्रकार हो सकती है -ण्स्वर यायन-पाठ्य-पुस्तकीय सामग्री-

-गद्यावतरण का सस्वर वाचन

- कविता पाठ।

पाठ्य-पुस्तकोत्तर सामग्री-निबन्ध पाठ, आलोचना पाठ आदि।

2. कथित सामग्री- कथित सामग्री इस प्रकार हैं -
   i. वार्तालाप
   ii. वाद-विवाद
   iii. चर्चा (परिचर्चा, पैनलचर्चा, दलचर्चा आदि)
   iv. भाषण, प्रवचन आदि
   v. सं्वाद (नाट्यांश एकांकी नाटक आदि)
   vi. वर्णन एवं विवरण।
   vii. आशु भाषण

विषय - श्रवण कौशल में दक्षता हेतु बालकों को अग्रलिखित विषयों पर ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए-

   i. सामाजिकरण, आर्थिक, राजनितिक, शैक्षिक तथा अन्य समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर।
   ii. राष्ट्रीय चेतना से सम्बन्धित विषयों पर।
   iii. धार्मिक एवं सास्कृतिक प्रवचन।
   iv. महापुरूषों के जीवन से सम्बन्धित विषयों पर
   v. साहित्यिक विषयों पर।
   vi. वैज्ञानिक विषयों पर।

अपेक्षित योग्यताए-श्रवण कौशल के विकास हेतु बालकों में निम्नलिखित अपेक्षित दक्षाओं के विकास की अपेक्षा की जाती है -

1. बालक सुनने में शिष्टाचार का पालन कर सके -
   मतभेतद होतु हुए भी धैर्यपूर्वक सुन सके।
   वक्ता के साथ सहानुभूति रख सके।
   बीच में अपने साथियों से बातचीत कर सके।
2. यह मनोयोगपूर्वक सुन सके।
3. बालक सुनते-सुनते समान ध्वनियों का पारस्परिक अन्तर समझ सके। यथ-ह्रस्व, दीर्घ स्तर, ए, ऐ, ओ, औ, न, पा, व, ब, श, स, क्ष आदि।
3. वह बलाघत, स्वराघात, सुर के आरोह-अवरोह, यति तथा वक्ता की आंगिक चेष्टाओं के अनुसार भाव या अर्थ-ग्रहण कर सके।
5. वह शब्दों, मुहावरों एवं उक्तियों का प्रसंगानुकूल वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ, व्यंगार्थ जैसी भी स्थिती हो, ग्रहण कर सके।
6. वह श्रुत सामग्री के महत्वपूर्ण विचारों, भावों, नामों तथा तथ्यों का चयन कर सके।
7. वह भाषा के चित्रमय प्रयोगों के अनुसार भावग्रहण कर सके।
8. वह आलंकारिक सौन्दर्य के अनुसार भावग्रहण कर सके।
9. वाचक द्वारा अशुद्धतः उच्चारित ध्वनियों की त्रुटियां पकड़ सके, उनका शुद्ध रूप निर्धारित करते हुए उनके प्रभाव से बच सके।

1. वह विवेकपूर्वक सुन सकें अर्थात -

पण् असम्बद्ध बातों को छोड़ सके।

पपण् मुख्य औ सम्बद्ध बातों का चयन कर सके।

पपपण् वह अक्रम और असम्बद्ध रूप से श्रुत सामग्री को सुसम्बद्ध एवं क्रमबद्ध करते हुए अर्थ ग्रहण कर सकें।

11. वाद-विवाद में पक्ष एवं विपक्ष के विचारों को तटस्थ रूप में सुनकर उनकी तुलना कर सके तथा वह अपना मत बन सके।

12. भाषण एवं चर्चा के अन्तर्गत मन में उठने वाली शंकाओं के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने के लिए उन्हें ध्यान में रख सके।

13. कथात्मक सामग्री (नाटक, कहानी आदि) में घटनात्मक मोड़ों पर कक्ष वस्तु की भावी दिशा के सम्बन्ध में उद्भावनापूर्ण अनुमान कर सकें।

13. पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को समझ सकें।

15. वक्ता को सामने समुपस्थित न देखते हुए केवल उसकी वाणी के उतार-चढ़ाव के अनुसार उसकी आंगिक चेष्टाओं की कल्पना करते हुए अर्थग्रहण कर सके।

श्रवण कौशल से विकासार्थ विधियां

श्रवण कौशल के विकासार्थ निम्न अभ्यास सामग्री का आश्रय किया जाना चाहिए -

1. वार्तालाप

एक अध्यापक को शिक्षण के साथ-साथ अपने विद्यार्थियों को परस्पर विचार-विमर्श, चर्चा, वार्ता आदि के भी पर्याप्त अवसर प्रदान करने चाहिए, जिससे उनमें श्रवण और अभिव्यक्ति कौशल का विकास हो सके और साथ ही विद्यार्थियों को झिझक भी दूर हो सकेगी।

वार्तालाप की विशेषता

एक स्वस्थ वार्तालाप में निम्न विशेषताएॅ होनी चाहिए -

i. वार्तालाप में वाद-विवाद और बहस की कोई गुजांइश नहीं होनी चाहिए।
ii. वार्तालाप में कुतर्क और बेसिर-पैर की बातें न हो।
iii. वार्तालाप में मार्धर्य और शालीनता होनी चाहिए।
iv. परस्पर धैयपूर्वक सामने वाले की बात को सुनने का अभ्यास होना चाहिए।
v. वार्तालाप की भाषा में गतिशीलता और प्रवाह होना चाहिए।
vi. वार्तालाप में हाव-भाव के अनुसार विचारों की अभिव्यक्ति होनी चाहिए।
vii. वार्तालाप के दौरान शिष्टाचार का प्रयोग होना चाहिए।
viii. वार्तालाप के दौरान भाव और अर्थ पूर्णतः स्पष्ट होना चाहिए, द्विअर्थी भाषा का प्रयोग नही होना चाहिए।
ix. वार्तालाप की भाषा व्याकरण द्वारा शुद्ध होनी चाहिए।

वार्तालाप की विधिंयॉ

- स्वस्थ अनुकरण -छोटे बच्चे घर में स्कूल में अपने से बड़ों की बोलने की नकल करते है अतः यह आवश्यक है कि उन्हें उपयुक्त वातावरण प्रदान किया जाये।
- उपयुक्त वातावरण -घर, विद्यालय और पड़ोस आदि का वातावरण अच्छा और शिष्ट होना चाहिए। बालक जिस प्रकार के बच्चों के साथ रहेगा, उनकी बोली पकड़ेगा और खुद को वैसा ही उच्चारण करेगा, अतः उसके संगी-साथी अच्छे होने चाहिए।
- अभ्यास -वार्तालाप के सद्गुणों के विकासार्थ निरन्तर अभ्यास आदि की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

वार्तालाप के साधन

वार्तालाप के निम्न साधन छात्रों के लिए उपलब्ध कराये जा सकते है --

- चित्र-प्रयोग -किसी चित्र का प्रदर्शन करते हुए अध्यापक विद्यार्थियों से प्रश्नोत्तरी भाषा में वार्तालाप की प्रेरणा दे सकता है।
- कहानी रचना - बच्चों को कहानी सुनकर उसे पुनः सुनाने को कहा जा सकता है।
- अभिनय -शिक्षण करते समय अभिनय पूर्वक प्रस्तुतीकरण होगा तो छात्र इसे लम्बे समय तक याद रख सकेंगें।
- वाद-विवाद प्रतियोगिता -बलकों को परस्पर तर्कविधि के आश्रय से वाद-विवाद के अवसर भी प्रदान किये जा सकते है, जिससे उनमें वार्तालाप की क्षमता उत्पन्न हो सके।

1. वाक्य रचना

वाक्य भाषा का महत्वपूर्ण चरण अथवा इकाई है। स्पष्ट शब्दों में महा जाये तो मुख से निकलने वाली सार्थक ध्वनिसमूह को, जिसमें व्यक्ति अपनी आकांक्षाओं, अभिवृत्तियों और भावनाओं का निदर्शन करता है, वाक्य कहलाता है अथवा पूर्ण अर्थ की प्रतीति कराने वाले शब्द समूह का नाम वाक्य है।

वाक्य के घटक अथवा विशेषता

वाक्य की निम्न विशेषताए है, जिन्हें हम वाक्य के घटक कह सकते है -

- आकांक्षा -वाक्य के एक अंश को पढ़ने या सुनने के बाद और अधिक जानने की आकांक्षा उत्पन्न होना इसका आकांक्षा नामक घटक है। जैसे-महेश ने इतान सुनने के बाद आगे क्या हुआ-सुनने का मन करता है। एक पुस्तक की रचना की। इतना पूरा सुनकर ही जिज्ञासा की शांति होती है।
- योग्यता - अन्वय करने के उपरान्त भी वाक्य के अर्थबोध में किसी प्रकार की बाधा का उत्पन्न न होना योग्यता है।

- शब्दक्रम - वाक्य में शब्दों का क्रम सुव्यवस्थित होना चाहिए, कभी-कभी शब्दक्रम गलत होने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। जैसे आयुर्वेदिक हाजमे की गोलियां वाक्य में ऐसा लग रहा है कि हाजमा शायद आयुर्वेदिक होता होगा, जबकि गोलियां आयुर्वेदिक होती हैं।
- स्पष्टता -वाक्य में स्पष्टता भी होनी चाहिए, अन्यथा वह अपने उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर पायेगा। इस हेतु वाक्य में सरल शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।
- सामर्थ्य - जो वाक्य श्रोता या पाठक की सुषुप्त भावनाओं को जागृत करने में समर्थ हो, वही उस वाक्य की सामर्थ्य है।

वाक्य निर्माण सम्बन्धी दोष

वाक्य के निर्माण करते समय निम्न दोष होने की संभावना पाई जाती है -

1. अस्पष्ट वाक्य, 2. द्विअर्थी शब्दों का प्रयोग, 3. निरर्थक शब्दों का प्रयोग, 3. जटिलता, 5. पुनरूक्ति दोष आदि ऐसे दोष है जो वाक्य के निर्माण करते समय अक्सर हो जाते हैं, इनसे बचना चाहिए।

2.प्रश्नोत्तर

प्रश्नों का बड़ा महत्व है। मानव मन सदैव जिज्ञासा से भरपूर रहा है, उसकी जिज्ञासाओं के समाधान हेतु प्रश्न करने की कला आनी चाहिए। प्रश्नोत्तर पद्धति के जनक सुकरात को माना जाता है। प्रश्नोत्तर द्वारा हम भाषायी कौशलों के विकास में अपनी महत्वपूर्ण निभा सकते हैं। अध्यापक को चाहिए कि वह बालकों से छोटे-छोटे प्रश्न करे और उन्हें भी प्रश्न करने के अवसर दे।

प्रश्नोत्तर प्रक्रिया को सफल बनाने हेतु चित्र का प्रदर्शन भी किया जा सकता है। प्रशनों में स्पष्टता और बोधगम्यता होनी चाहिए। प्रश्नों की भाषा सरल हो, प्रश्न का आकार बड़ा न हो। प्रश्न ज्ञानवर्धन हो, तर्क पर आधारित प्रश्न छात्रों की मानसिक क्षमता का विकास करते हैं, अतः प्रश्न कौशल का अभ्यास भी भाषायी कौशल के लिए बहुत आवश्यक है।

कहानी कथन

कहानी का नाम सुनते ही बच्चे चहचहा जाते हैं, अतः बच्चों को कहानियां सुनाकर भी भाषायी कौशलों का विकास किया जा सकता है। कहानियां बच्चों का सर्वाधिक ध्यान आकर्षित करती हैं।

अभिव्यक्ति कौशल के विकासार्थ अधूरी कहानी सुनाकर उसे पूरी करने को भी कहा जा सकता है। इससे बच्चों में बोधक्षमता, तर्कशक्ति, शब्द संयोजन, कल्पनाशक्ति का विकास होगा।

घटना वर्णन

कहानी के अतिरिक्त इसी पद्धति से बच्चों के जीवन में घटित कोई महत्वपूर्ण घटना, स्वप्न आदि का वर्णन करने को भी कहा जा सकता है। इससे बच्चों की अभिव्यक्ति में निखार आयेगा। स्मृति, कल्पना का घटना के साथ-साथ घटनानुसार भावों में परिवर्तन आवश्यक है। इसकी शिक्षा बालक को अवश्य देनी चाहिए।

शिक्षक को चाहिए कि वह बालक द्वारा घटना सुनाते समय उसकी बातों को ज्यों का त्यों स्वीकार करें, कि बीच-बीच में टोककर उसके विचारों को अवरूद्ध करे। ऐसा करने से बालक की अभिव्यक्ति क्षमता पर बहुत बुरा दुष्प्रभाव पड़ता है। घटना के अतिरिक्त किसी मेले का दृश्य, बरसात की मस्ती, पिकनिक की स्मृति का भी वर्णन किया जा सकता है।

यात्रा वर्णन

किसी भी यात्रा को अविस्मरणीय बनाने और उसका आनन्द पुनः स्मृति के आधार पर लेने के लिए उसका वर्णन करना आवश्यक है। इस प्रकार वर्णन करने से भाषायी कौशलों का विकास होगा।

जब बालक यात्रा का वर्णनकरते समय अटक जाये तो उसे प्रश्न के माध्यम से उकसाना चाहिए कि वह और वर्णन कर सके। जैसे-मेले के वर्णन पर कहें कि अच्छा बताओ मेले में और क्या-क्या देखा? मेले में तुमको क्या खरीदने का विचार आया ? अन्त में इस यात्रा से हुए लाभों को भी जानने की चेष्टा की जानी चाहिए। इस प्रकार यात्रा का वर्णन रूप से हो सकेगा।

काव्यपाठ

काव्य में लयबद्ध का आनन्द भरा होता है, अतः बच्चों को वे काव्यपंक्ति बहुत रोचक लगती हैं। अतः काव्यपाठ के अवसर विद्यालय में अक्सर देना चाहिए। बच्चों की स्मरण शक्ति अच्छी होती है, अतः वे इन्हें आसानी से याद भी कर लेंगे। बच्चों को अपने आस-पास के परिवेश की और पशु-पक्षी, खिलौनों से सम्बन्धी कविता सुनना-सुनाना अच्छा लगता है।

इन कविताओं की भाषा सरल और बोधगम्य होनी चाहिए। बच्चों के स्तर की भाषा होनी चाहिए। इन काव्य पंक्तियों को गुनगुनाते हुए उन्हें थकान भी महसूस नहीं होती है। अध्यापक को चाहिए कि वह कविता की पंक्तियों का सामूहिक और आदर्शवाचन करे.

अभ्यास प्रश्न

8. श्रवण कौशल के विकास हेतु बालकों में अपेक्षित योग्यताओं को समझाएं
9. वाक्य के घटक समझाएं
10. वाक्य निर्माण सम्बन्धी दोष कौन. कौन से हो सकते हैं

4.7 श्रवण कौशल विकास आधारित शिक्षण उद्देश्य

इस दृष्टि से यह उचित होगा कि हम शिक्षार्थी को ऐसी क्रियाएं में सहभागी बनाएं जिसमें वह:-

1. ध्यानपूर्वक सुनने की योग्यता का विकास।
2. शुद्ध उच्चारण के योग्य बनाना।

3. स्वर के उतार-चढ़ाव को समझने की योग्यता प्रदान करना।
4. मौखिक अभिव्यक्ति की विविध शैलियों का ज्ञान देना।
5. सुनकर समझने की योग्यता विकसित करना।
6. महत्वपूर्ण अंशों के चयन की योग्यता विकसित करना।
7. मर्मस्पर्शी स्थलों को अनुभव करने की क्षमता विकसित करना।
8. श्रुत सामग्री का सारांश ग्रहण करने की क्षमता विकसित करना।
9. ग्रहण-शीलता की मनः स्थिति विकति करना।
10. बौद्धिक एवं मानसिक विकास की ओर अग्रसर करना।
11. विषय सम्बन्धित रूचि विकसित करना।
12. रेडियो, कैसेट एवं दूरदर्शन पर प्रस्तुत संवादों, समाचारों एवं वार्ताओं को सुनकर समझ सके।
13. सुनी हुई विषय-वस्तु के आधार पर प्रश्न पूछकर अपनी शंका का समाधान कर सके।
14. भाषा के विभिन्न कौशलों को विकसित करने में सहायक।

श्रवण कौशल के विकास में श्रवण कौशल का विकसित करने वाली सामग्री की भूमिका अहम होती है। इसलिए, सर्वप्रथम हम जानेगे कि शिक्षण सामग्री क्या है और उसकी विशेषताएं किस रूप में उजागर होती हैं।

शिक्षण सामग्री -

शिक्षण-अधिगम एक बहुमुखी क्रिया है। इसे अधिक रोचक, प्रभावशाली एवं उपयोगी बनाने के लिए विभिन्न प्रकार के साधनों का प्रयोग किया जाता है। स्कूल, कक्षा, शिक्षण विधियां, पाठ्य सामग्री पुस्तकालय, पाठ्य सहायक क्रियाएं व शिक्षण सहायक सामग्री आदि शिक्षा के साधन है। शिक्षा के विशिष्ट एवं व्यापक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए इन साधनों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु शिक्षा और शिक्षण का क्षेत्र इतना व्यापक है कि इसके लिए सदैव नए-नए साधनों की आवश्यकता बनी रहती है। आजकल शिक्षा-प्रक्रिया में श्रव्य-दृश्य साधनों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है क्योंकि इनके प्रयोग से शिक्षण को अधिक प्रभावशाली एवं सरल बनाया जा सकता है।

श्रव्य दृश्यसाधन तीन शब्दों से मिलकर बना है - 'श्रव्य $ दृश्य $ साधन। श्रव्य का अर्थ है 'जिसे सुना जा सके।'' दृश्य का अर्थ है जिसे '' देखा जा सके।'' इस प्रकार श्रव्य-दृश्य साधन शिक्षण के ऐसे सहायक साधन है जिनके द्वारा विद्यार्थियों के चक्षुओं तथा कानों को अधिक सक्रिय बनाकर उनके लिए शिक्षण को अधिक स्थायी, सुबोध एवं सहज बनाया जाता है। श्री फाउलर के शब्दों में, ''एक चित्र बहुधा इतने विचार प्रस्तुत कर देता है जो कई पुस्तकों से अधिक होते है। । चपबजनतम पे इमजजमत जींद जीवनेंदक ूवतके बहुत से ऐसे विषय होते है जिन्हें मौखिक रूप से शिक्षक बालकों को नही समझा सकता। परन्तु दृश्य श्रव्य सामग्री की सहायत से बालक आसानी से समझ लेता है। फ्रांसीसी डब्ल्यू नायल ने सामग्री के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है, ''किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम का आधार अच्छा अनुदेशन है और श्रव्य-दृश्य प्रशिक्षण साधन इस आधार के आवश्यक अंग है।''

श्रवण दोष के प्रमुख कारण

श्रवण दोष के कुछ कारण ऐसे हैं जिनसे सुनी हुई बात में दोष आ जाता है औरकुछ के स्थान पर कुछ अन्य ही समझ लिया जाता है, जिससे बहुत घातक दुष्परिणाम हो सकते हैं। आइये, देखते हैं श्रवण दोष के कुछ प्रमुख कारण -

1.शोरगुल 2. श्रवेणन्द्रिय में दोष होना, 3. अवधान केन्द्रित न हो पाना, 3. श्रव्य सामग्री में अरूचि, 5. क्लिष्टता अथवा अज्ञानता आदि।

श्रवण दोष निवारण के उपाय

1.शान्त वातावरण, 2. श्रवणेन्द्रिय दोष का उपचार, 3. अवधान केन्द्रीकरण, 3. रूचि, 5. विषय की बोधगम्यता आदि। इन उपायों को अपनाकर हम श्रवण सम्बन्धी दोषों से बच सकतें हैं और दोष से उत्पन्न हानियों से बच सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

11. श्रवण कौशल के शिक्षण उद्देश्य की व्याख्या करें
12. श्रवण के दोष एवं निवारण के उपाय क्या हैं

4.8 सारांश

भाषा एक कला विषय है। भाषा को दूसरी कलाओं की भांति सीखा जाता है। सतत् अभ्यास में इसमें प्रवीणता प्राप्त की जाती है। जिस प्रकार दूसरी कलाओं को सीखने के लिए अनेक साधनों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार भाषा सीखने के लिए भी साधन आवश्यक होते हैं। यहां साधन शब्द अभ्यास का पर्याय है। कला की साधना अन्ततः आदत बन जाती है।

भाषा में निपुणता लाने के लिए केवल पढ़ना और लिखना ही काफी नही है। उससे पहले हमें सुनने और बोलने की कला में भी निपुणता प्राप्त करनी होगी। सुनना और बोलना अच्छी भाषा सीखने के आधार है। जिसके धरातल पर ही दूसरी कलाएं सीखी जाती हैं जैसे - लिखना, पढ़ना इत्यादि। इन कलाओं में दक्षता प्राप्त करके ही व्यक्ति किसी भी प्रकार ज्ञानार्जन कर सकता है।

बालक अपने जन्मकाल से ही कुछ सार्थक व निरर्थक ध्वनियां सुनने लगता है पर कुछ महीनों तक वे ध्वनियां उसके लिए सार्थक होने लगती है। बालक की अधिकांश भाषा शिक्षा उसकी श्रवण द्वारा गृहित ध्वनियों पर ही आधारित होती है। श्रवण शक्ति के महत्व के लिए यह पौराणिक उदाहरण है कि वीर अभिमन्यु ने चक्रव्यूह भंग करने की शिक्षा अपनी माता के गर्भ में उस समय सीख ली थी जब अर्जुन अपनी पत्नी सुभद्रा को व्यूह भंग करने की विधि सुना रहे थे। डा0 माया मित्रा के विचारानुसार ''श्रवण कौशल से अभिप्राय यह है कि किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा उच्चारण की हुई ध्वनियों, शब्दों, भावों और विचारों को कानों में सुनकर अर्थ ग्रहण करने की क्रिया।'' जहां तक मातृभाषा के सन्दर्भ में श्रवण के लिए कौशल के विकास का प्रश्न है। इसका कुछ विकास तो बच्चों में विद्यालयों मे प्रवेश लेने से पहले हो चुका

होता है। परन्तु उनकी निश्चित सीमा होती है। विद्यालयों में बच्चों को मातृ भाषा के सर्वमान्य रूप को सुनने और सुनकर उसका अर्थ एवं भाव समझने में दक्ष किया जाता है। इसके लिए हमें विद्यालयी शिक्षा में भिन्न-भिन्न कार्य करने पड़ते हैं।

4.9 शब्दांवली

'श्रवण' शब्द 'श्रु' धातु से बना है, जिसका संबंध सुनने की विभिन्न क्रियाओ यथा ध्यानपूर्वक सनने, सीखने तथा मौखिक बातचीत करने इत्यादि से है। श्रवण अंगेंजी के स्पेजमदपदह शब्द का पर्याय है। अंगेजी शब्द स्पेजमदपदह का किसी ध्वनि का कान तक पहुंचना मात्र है। जबकि स्पेजमदपदह को अर्थात अर्थ निष्पादन की प्रक्रिया कहा गया है।

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. श्रवण कौशल से आप क्या समझते हैं ?
2. श्रवण कौशल के विकास का अर्थ समझाइये।
3. श्रवण के महत्व व दोषों का वर्णन कीजिए।
4. श्रवण कौशल में दक्षता हेतु उपायो की व्याख्या कीजिए।
5. टिप्पणी लिखिए -
    a. कहानी कथन,
    b. घटना वर्णन,
    c. यात्रा वर्णन,
    d. काव्य पाठ,
    e. वार्तालाप।

4.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एन.आर.स्वरूप सक्सेना,शिखा चतुर्वेदी (2008) उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षक , मेरठ, आर.लाल बुक डिपो।
2. रमन बिहारी लाल (2007) हिन्दी शिक्षण , मेरठ ,रस्तोगी पब्लिकेशन ।
3. रजा मूनिस ;(2002) शिक्षा और विकास के सामाजिक आयामण् नई दिल्ली रू ग्रन्थ शिल्पी
4. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (2005)
5. आचार्यए राममूर्ति ;1990 शिक्षाए संस्कृति और समाजय श्रम भारती ए खादीग्राम बिहार
6. IGNOU. (2012). Self Learning Material for DPEEnrichment Programme. New Delhi.

इकाई 5 - विद्यार्थियों में स्व के विषय में जागरूकता के विकास में मदद करना

Facilitating Development of Awareness above Identity among Learners

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 पहचान का अर्थ
5.4 पहचान के विभिन्न प्रकार
5.5 पहचान के विकास की आवश्यकता
5.6 पहचान के विकास में बाधाएं
5.7 पहचान के विषय में जागरूकता लाने में शिक्षक की भूमिका
5.8 सारांश
5.9 शब्दावली
5.10 निबंधात्मक प्रश्न
5.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

5.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व के पाठ में आपको यह ज्ञात हो चुका है कि मनुष्य का व्यक्तित्व गतिशील है, जिसकी वजह से वह स्वयं के विषय में जानने के लिए उत्सुक रहता है। उसके मन मस्तिष्क में बहुत से प्रश्न घूमते रहते हैं। जीवन में वह अपने आप अर्थात" स्वयं को" खोजने की कोशिश करता रहता है। स्वयं को खोजने एवं जानने की प्रक्रिया भी आजीवन चलती रहती है। हाल के दशको में, विद्वानों ने" पहचान" के विषय में प्रश्नों में गहन रुचि ली है। "पहचान,- स्वयं की हमारी समझ" , की अवधारणा एक जटिल और अस्पष्ट अवधारणा है।

पिछले कई दशकों में, पहचान की अवधारणा में काफी बदलाव आए हैं , ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षक भी स्वयं को जानने एवं पहचाने का प्रयत्न पूरी इमानदारी के साथ करे। स्वयं के विषय में जानने में शिक्षक छात्र का आदर्श होता है। आपने देखा है कि परिवार, शिक्षक का आचरण, व्यवहार, व्यक्तित्व सभी छात्रों को प्रभावित करता है। शिक्षक बच्चों में पहचान अथवा स्वयं को जानने

में उनके निहित योग्यताओं के विकास व खोज के लिए जिम्मेदार होता है ।इस अध्याय में हम स्वयं के पहचान के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. पहचान के अवधारणा को समझ पाने में समर्थ होगे।
2. पहचान के बारे में एक सैद्धांतिक दृष्टिकोण की समझ विकसित कर पायेंगे।
3. पहचान की समझ विकसित करने के पहलुओं को समझ पायेंगे ।
4. व्यक्तिगत और सामाजिक मुद्दों पर पहचान के ज्ञानका उपयोग , भविष्य में प्रयोगों का वर्णन कर पायेंगे।
5. स्वयं और पहचान प्रक्रियाओं के बारे में विचारों के महत्वपूर्ण मूल्यांकन कर पाने में समर्थ होगे।
6. पहचान के विषय में जागरूकता लाने में शिक्षक की भूमिका की समझ विकसित कर पायेंगे।

5.3 पहचान का अर्थ Meaning of Identity

पहचान का शाब्दिक अर्थ (identity, recognition),समानता(equality, similarity, identity), समरूपता (similarity), सारुप्य (rapport, identity), समरसता (harmony),सरूपता, शिनाख्त है। " एक व्यक्ति के विशिष्ट व्यक्तित्व को" , व्यक्तिगत विशेषताओं जिसके द्वारा कोई चीज़ या व्यक्ति मान्यता प्राप्त करता है, उसकी पहचान के रुप में उभर कर हमारे समक्ष आती है। पहचान की अवधारणा भारतीय परिपेक्ष्य में स्वयं को जानने वह समझने कि हमारी सदियों पुराने प्रयास को दर्शाता है। भारतीय दर्शन में स्वयं को जानना वह समझना एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है।

" पहचान::: एक अवधारणा है, जो व्यक्तियों को उनके सामाजिक और प्रतीकात्मक विश्व, [इतने] वर्षों में एक बनाए रखने में ,कुछ अवधारणाओं की सामान्य शक्ति है। यह व्यक्ति को उनके सामाजिक और प्रतीकात्मक विश्व से न तो कारावास (जैसा कि समाजशास्त्र में बहुत अधिक है)और न ही पृथकता \ असंलग्न (जैसा कि दर्शन और मनोविज्ञान में बहुत कुछ होता है) करता है"।

"Identity : : : is a concept that neither imprisons (as does much in sociology) nor detaches (as does much in philosophy and psychology) persons from their social and symbolic universes, [so] it has over the years retained a generic force that few concepts in our field have." (Davis 01991:105)

"दंतता, समग्रता की एक छवि तक पहुँचने की केवल एक समस्याग्रस्त प्रक्रिया है , यह कभी भी प्राथमिकता नहीं है, न ही एक तैयार उत्पाद; है।" भाभा 1 99 4: 51

"Identity is never a priori, nor a finished product; it is only ever the problematic process of access to an image of totality." (Bhabha 1994:51))

पहचान के गठन में एरिक एरिक्सन के विकासात्मक मनोवैज्ञानिक शोध की विशेष रूप से किशोरावस्था पर ध्यान केंद्रित करने की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है। उन्होंने यह तर्क दिया कि किशोरावस्था पहचान गठन के लिए एक महत्वपूर्ण चरण है, जिसमें लक्ष्यों, मूल्यों, और रुचियों के एक स्थिर सेट में खुद को ढूंढने और खुद को तैयार करने के लिए व्यक्ति अथवा बालक को तैयार रहना चाहिए ।में जर्मन शहर 51 9 1 में आयोजित बैठक में चर्चा मनोवैज्ञानिक विश्लेषक एरिक एरिकसन की एक पहचान की संकट की अवधारणा पर चर्चा की । एरिक्सन ने 'इनर आइडेंटिटी की भावना' पर बात की। यह अवधारणा महत्वपूर्ण थी , लेकिन यह स्पष्ट नहीं था कि इसका सटीक अर्थ क्या है?

1986 में, मार्कस और नुरीस ने लोगों की उम्मीदों, इच्छाओं और भविष्य के बारे में बताते हुए, संभवतः स्वयं पहचान शब्द का इस्तेमाल किया। उन्होंने तर्क दिया कि वांछित और भयभीत भविष्य की आशंका वर्तमान में लोगों के व्यवहार के मुख्य प्रेरक होने चाहिए। . पहचान का संस्करण स्व-स्कीमा में संगठित ज्ञान (स्वयं) पहचान के प्रश्न पर संज्ञानात्मक प्रतिक्रिया: - मैं कौन हूँ? इसमें शामिल है ।अपने आप को ,विशेषताओं, वरीयताओं, लक्ष्यों, और व्यवहार जो हम अपने साथ संबद्ध करते हैं, वह पहचान हैं । पुराने अर्थों में पहचान हमारे वर्तमान आत्म-छवि अर्थ के बहुत करीब है ।पहचान, आत्मसम्मान बढ़ाती है, क्योंकि लोग खुद को सकारात्मक रूप से मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित होते हैं ।

i. पहचान - की अवधारणा यह स्पष्ट करती है , कि वे कौन हैं, किस तरह के लोग हैं, और वे कैसे दूसरों से संबंधित हैं।
ii. व्यक्तियों और समूहों में स्वयं का वर्णन और
iii. अन्य लोगों द्वारा दी गई पहचान जोकि जाति, नस्ल, धर्म, भाषा और बहुत से आधार पर वर्गीकृत की गई है।

जॉन टर्नर स्वयं द्वारा विकसित आत्म वर्गीकरण के सिद्धांत के अनुसार पहचान की अवधारणा को दो स्तर में बांटा गया है- व्यक्तिगत पहचान व सामाजिक पहचान। इसके अतिरिक्त पहचान की अवधारणा को समाजिक पहचान के अंतर्गत विभिन्न भागों में विभाजित किया गया है ।यह समाज में एक व्यक्ति के द्वारा अलगअलग समूह में रहते हुए अपने-- अपने कार्यों के क्रियान्वयन के आधार पर विभाजित किए गए हैं। इसके अंतर्गत लिंग ,जाति, धार्मिक व्यवस्था, विभिन्न कार्य- समूहों के विभिन्न व्यवस्था आदि के अंतर्गत भी पहचान अपनी भूमिका निभाती है। पहचान की बहुरूपता के विषय में विल्यम जेम्स ने लिखा था -

"पहचान के व्यापकतम अर्थ में, यह एक आदमी का कुल योग है, जिसमें वह अपने शरीर और मानसिक शक्तियों, न केवल अपने पूर्वजों और दोस्तों ,उनकी प्रतिष्ठा और कार्य अपने कपड़े ,घर, पत्नी और बच्चों, , भूमि ,घोड़ों, नौका और बैंक खाते इत्यादि सभी को सम्मिलित करता है, जो पूर्ण रुप से उसकी पहचान का निर्माण करती है"

विलियम जेम्स के शुरुआती लेखों "द सेल्फ के प्रकाशन के बाद से, मनोवैज्ञानिकों ने यह मान्यता दी है कि स्वयं-अवधारणा के मनोवैज्ञानिक सीमाएं व्यक्तियों से परे हैं।1 9 70 के दशक में हेनरी ताजफेल और उनके सहयोगियों ने सामाजिक पहचान सिद्धांत (एसआईटी) विकसित किया। हालांकि उनके काम का प्रारंभिक ध्यान अंतर-समूह संबंधों के मनोवैज्ञानिक आधारों को समझने पर था, और उनके शोध ने उन्हें पहचान प्रक्रियाओं के बारे में बहुत कुछ सीखने के के लिए प्रेरित किया।

इसके पश्चात और भी कई अवधारणाएं आई -जैसे सामाजिक निर्माणवाद (जीरेंन, 1 9 85; हार्रे, 1 9 86) मानते हैं कि स्वयं, व्यक्ति, मन और समूह जैसे मनोवैज्ञानिक अवधारणाएं 'चीजें' नहीं हैं , बल्कि वे कई अर्थों के साथ मानव निर्माण कर रहे हैं जो सक्रिय रूप से कार्य करती है । सामाजिक निर्माणवाद, सामाजिक संपर्क और संचार प्रक्रियाओं के माध्यम से संबंधित हैं । शोधकर्ताओं ने अलग-अलग संस्कृतियों और संदर्भों में उपलब्ध अर्थों के साझा किए गए पैटर्नों को चित्रित करने, विभिन्न संदर्भों में स्वयं और पहचान बनाने के लिए भाषा का उपयोग किया है, इसका अध्ययन करने का प्रयास किया है। हम कौन हैं ? या आत्म-अवधारणाओं हालांकि, हमारी स्व-अवधारणाओं को बनाने में, सांस्कृतिक व्याख्यान हमारे सामाजिक परिवेश में जोर देते हैं। । सामाजिक अनुभूति एक सिद्धांत है- कि हम किस प्रकार जानकारी को संचित और संसाधित करते हैं (Fiske & टेलर 1991, ऑगूस्टिनो और वॉकर 1995)। ऐतिहासिक क्षणों में, पहचान मुद्दा नहीं थी, समाज अधिक स्थिर था पिछले कई दशकों में,सामाजिक संरचनाओं और प्रथाओं में सामाजिक अनुभूति और अंतःक्रिया की अवधारणा काफी बदलाव आए हैं । मानव की संज्ञानात्मक क्षमता सीमित हैं; इसलिए, हम संज्ञानात्मक रूप में जानकारी संसाधित करते हैं, सूचना को सुव्यवस्थित कर, जानकारी को वर्गीकृत करते हैं। स्वयं की हमारी समझ के लिए, संज्ञानात्मक प्रक्रियाए एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

वास्तव में जीवन में परिवर्तन अनिवार्य, आवश्यक और अक्सर वांछनीय हो सकते हैं। अनुसंधान ने कई तरीकों से दिखाया है जिसमें लोग समय के साथ उनकी निरंतरता की भावना को और बढ़ाते हैं। लोग अक्सर वर्तमान के साथ उन्हें और अधिक सुसंगत बनाने के लिए अतीत की अपनी यादों को संशोधित करते हैं।

1. पहचान किसे कहते हैं?
2. पहचान की विशेषताओं को संक्षेप में लिखिए।

5.4 पहचान के विभिन्न प्रकार Different types of identity

पहचान को मुख्यता दो स्तर में विभाजित किया गया है-- व्यक्तिगत पहचान व सामाजिक पहचान ।परंतु जब हम पहचान के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देते हैं ,तो उनके अनुसार हम इसे निम्न बिंदुओं पर विभाजित कर सकते हैं--

5.4.1 व्यक्तिगत पहचान (Individual identity)

जब हम व्यक्तिगत पहचान की बात करते हैं, तो इसका यह अर्थ होता है कि " मेरी पहचान -मैं कौन हूं" स्वयं के लिए मेरी आत्म-समझ , विश्वास, रुचि ,इच्छा से संबंधित है। इसका अर्थ यह है की मेरी आत्म-समझ व सिद्धांतों के अनुसार जो एक व्यक्ति सोचता है। जब हम कहते हैं कि ,मेरी पहचान -, "हमारा मतलब है कि मैं कौन हूं", हम खुद के एक पहलू के बारे में बात कर रहे हैं।व्यक्तिगत पहचान एक व्यक्ति के महत्व पूर्ण पहलुओं को बताते है। व्यक्तिगत पहचान आम तौर पर एक व्यक्ति के पहलुओं या विशेषताओं के रूप में दी गई हो सकती है जो अपने गरिमा या आत्म सम्मान के लिए आधार बनाते हैं।

चार्ल्स टेलर स्वयं के पहचान के स्रोत:" द मेकिंग ऑफ द मॉडर्न आइडेंटिटी", के अनुसार---
"पहचान का सवाल ... अक्सर स्वस्थ रूप से वाक्यांशों के आधार पर होता है।"
व्यक्तिगत पहचान प्रतिबद्धताओं के अंतर्गत बंधा होता है जिससे व्यक्तिगत पहचान को निर्धारित करने का प्रयास किया जाता है। जैसा कि एक व्यक्ति के लिए "मैं" किस पहचान के अंतर्गत जुड़ा रहना चाहता हूं, मेरे व्यक्तित्व की इस खास पहलू से मेरी पहचान बनती है आदि। मेरे लिए, क्या अच्छा है,क्या किया जाना चाहिए, इस का मैं समर्थन या विरोध करता हूँ। इस प्रकार, टेलर के अनुसार , व्यक्तिगत पहचान एक व्यक्तिगत नैतिक कोड या कम्पास है, नैतिक सिद्धांतों, , या लक्ष्यों का एक समूह जिसे एक व्यक्ति मानक के रूप में उपयोग करता है।

यह स्पष्ट है कि व्यक्तिगत पहचान में एक व्यक्ति के पहलुओं या विशेषताओं का एक सेट होता है। इसके अंतर्गत व्यक्तिगत शैली ,,पोशाक, भाषण, सांस्कृतिक पसंद\ नापसंद के चुने हुए व्यवहार, के माध्यम से स्वयं को समूह से अलग करता है। व्यक्तिगत पहचान ,मेरी ऊंचाई, बाल, व्यवसाय, नैतिक प्रतिबद्धता, मेरे जीवन के लक्ष्यों, विशिष्ट स्थानीय संस्कृति व्यक्तिगत पहचान के रूप में समझी जा सकती है।

5.4.2 लिंग आधारित पहचान (Gender identity)

हमारे जीवन में लिंग की महत्व और केंद्रीयता के कारण ,यह अपने आप में एक श्रेणी के रूप में माना जाता है। सामाजिक पहचान की प्रकृति के बारे में अधिक जानने के लिए तीन पहचानों पर विशेष रूप में लिंग, जातीयता और राष्ट्रीयता, ।यौन अभिविन्यास ,(आम तौर पर एक पुरुष या महिला के रूप में) के साथ बहुत सारे अर्थ और प्रभाव जुड़े हुए हैं। कई लोगों ने लिंग पहचान कि अवधारणा के लिए तर्क दिया, महिला के रूप में शारीरिक विशेषताओं(नरम आवाज), भूमिका व्यवहार(बच्चों की देखभाल

करना) व व्यक्तित्व के लक्षण(भावनाओं के बारे में जागरूक होना) के आधार पर पुरुष से अलग है। लिंग के आधार पर महिला की पहचान के आधार भिन्न भिन्न हो सकती है। लिंग पहचान को मौलिक भावना को मानते हुए निम्नरूप में परिभाषित किया जाता है----

" किसी के पुरुषपन\ स्त्रीत्व के अस्तित्व की मौलिक भावना"

लिंग की पहचान को निर्धारित करने में सांस्कृतिक मानदंडों, सामाजिक परिस्थितियों , की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिशु के जन्म होने के पश्चात माता पिता समन्वित रूप से बेटे और बेटी की देखभाल करते हैं उसके बाद की अवस्था में द्वारा पूर्व निर्धारित तरीके से लड़के और लड़कियों के व्यवहार को आकार देने का प्रयास किया जाता है। लड़कियों को गुड़िया से खेलना ,देखभाल करना, धीरे बोलना व लड़के को खेलने पर जोर देना, आत्मनिर्भर बनने के लिए प्रेरित करना।लिंग पहचान में जैविक सुविधाओं के अलावा व्यक्तिगत व सामाजिक विशेषताएं,सामाजिक संबंध, मूल्यों का विकास का निर्धारण करने के समय व्यापक रुप से लिंग संबंधित व्यवहार एक पुरुष अथवा एक महिला होने का अर्थ व्यापक रूप से जोड़ दिया जाता है।

5.4.3 सामाजिक पहचान (Social identity)

सामाजिक श्रेणियों में सदस्यता, व्यक्ति-विशिष्ट , लक्ष्यों, इच्छाओं, नैतिक सिद्धांतों, या
व्यक्तिगत शैली ,व्यक्तियों के पहलुओं या विशेषताओं का होना जो कि व्यक्ति के , अन्य व्यक्तियों में अंतर रखते हैं। विशेष परिस्थितियों में कुछ क्रियाओं, व्यवहार, उन व्यक्तियों के पहचान का उल्लेख करती है कि आप कौन हैं? उदाहरण के लिए, ड्राइवर, माँ, पिता, अध्यक्ष, प्रोफेसर, व्यापारी, छात्र ,उन व्यक्तियों पहचान का उल्लेख करती है, जो कुछ विशेषताओं को साझा करते हैं।

सामाजिक पहचान के अलग प्रकार: जातीय और धार्मिक पहचान, राजनीतिक पहचान, व्यवसाय और । इनमें से प्रत्येक प्रकार की कुछ अनूठी विशेषता हैं। सामाजिक समूहों में उन लोगों के लिए सामाजिक पहचान की प्रक्रिया एक चुनौती है,जो नकारात्मक रूप से समूहों के सदस्य, को अलग करने का प्रयास कर सकते हैं

5.4.4 सांस्कृतिक पहचान (Cultural identity)

सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक संदर्भ के आधार पर प्रत्येक क्षण में परिवर्तन करता है, यह गतिशील और लगातार विकसित हो रही है। । यह व्यक्ति के पूरे जीवन काल को शामिल करता है। सांस्कृतिक पहचान, स्वयं की पहचान के एक समूह से संबंधित है, जो खुद को पुनः पुष्टि करता है। संस्कृति में व्यवहार, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक रूप से दुनिया से संबंधित मूल्य, अर्थ, रीतिरिवाज़ और विश्वास - शामिल हैं। यह ऐतिहासिक अनुभवों और साझा सांस्कृतिक को दर्शाता है।,लोगों के निर्णय के बारे में कि क्या वे या अन्य किसी सांस्कृतिक समूह से संबंधित हैं, , पैतृक मूल या व्यक्तिगत व्यवहार ,ऐतिहासिक घटना, राजनीतिक परिस्थितियां, बातचीत की स्थिति भी सांस्कृतिक पहचान को प्रभावित करती है।

विभिन्न संस्कृतियों के लोग खुद को कुछ हद तक अलग तरह से वर्णन करते हैं ।, विभिन्न संस्कृतियों में अंतर्निहित उद्देश्यों में अंतर लोगों के को दर्शाते हैं।

5.4.5 राष्ट्रीय पहचान (National identity)

एक व्यक्ति विशेष के लिए स्वयं को राष्ट्रीय प्रतीकों के साथ जोड़ देते हैं , इस स्थिति को राष्ट्रीय पहचान के रूप में जाना जाता है ।राष्ट्रीय पहचान उस स्थिति का वर्णन करती है जिसमें बड़े पैमाने पर हम अपने आप को पहचानने के लिए अलग तरह के प्रतिनिधित्व का उपयोग करते हैं ।इसके अंतर्गत हम स्वयं को भारतीय,अमेरिकी , अश्वेत आदि के रूप में पहचानते हैं। राष्ट्रीय पहचान के संदर्भ में हम अपने भौगोलिक , ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक ताने बाने पर गर्व महसूस करते-हैं।

राष्ट्रीय पहचान, तत्वों प्रतीकों, भारतीय पहचान और विरासत के साथ परिचय देता है। एक राष्ट्रीय पहचान की अभिव्यक्ति सकारात्मक प्रकाश में देखी जाती है -देशभक्ति ,राष्ट्रीय गौरव और एक देश के लिए प्रेम की सकारात्मक भावना के रूप में देखा जाता है। राष्ट्रीय पहचान की अभिव्यक्ति, "हम 'की भावना और मान्यता" है जो देश की श्रेष्ठता , के प्रति अत्यंत विश्वास को दर्शाती है। राष्ट्रीय पहचान एक राज्य या एक राष्ट्र से संबंधित पहचान की भावना है, जिसमें हम विशिष्ट परंपराओं, संस्कृति, भाषा और राजनीति द्वारा प्रतिनिधित्व करते है।

5.4.6 सामूहिक पहचान (Collective identity) समूह की पहचान

जीवन के विकास ने हमें सिखाया है कि समूह में रहना लाभदायक है, जहां हम दैनिक अस्तित्व का काम साझा कर सकते हैं। हम अक्सर खुद को अन्य लोगों और समूहों के संदर्भ में वर्गीकृत करते हैं। जब अपने बारे में पूछा जाए, तो आप अपने काम और परिवार के रिश्तों के संदर्भ में खुद का वर्णन कर सकते हैं: हम एक दूसरे के साथ अपने सुख- दुख बांट सकते हैं ,अपने आप को अभिव्यक्त कर सकते हैं, इसलिए यह आवश्यक है हम अपनी पहचान स्थापित करें।" मैं------- कंपनी के लिए काम करता हूं। "मेरे परिवार की 7 सदस्य हैं।" यह सारी भावनाएं असल में पहचान से संबंधित हैं, इसके अंतर्गत जिनके भी साथ हम जुड़ाव महसूस करते हैं उनके साथ स्वयं को जोड़कर देखते हैं। इस तरह से एक जटिल समूह का अस्तित्व हमारे समक्ष नजर आता है । कुछ लोगों ने समूह पहचान पर अधिक जोर दिया। असल में, उनकी और स्वयं को स्वयं की समझ में जोड़ते हैं।

जिन समूहों के साथ हम अपनी पहचान बनाते हैं, उनको अस्वीकार करने का डर एक शक्तिशाली बल है । बहुत से लोग कभी अपनी रचनात्मक, क्षमता को से बाहर करने से रोकते हैं।कभीट कभी समूह के टू-जाने अथवा स्वयं के समूह से अलग हो जाने के डर से स्वयं को अभिव्यक्त करने से रोक लेते हैं उनकी अपनी रचनात्मकता, कार्यक्षमता, सृजनात्मकता जैसी प्रवृतियों को अस्वीकार्य जाने के डर से वह अपने अंदर ही समेट लेते हैं।

5.4.7 **नस्ल से संबंधित पहचान** (Ethnic Identity)

नस्ल से संबंधित पहचान व जाति (class identity)से संबंधित पहचान को कई बार एक दूसरे से जोड़ कर देखा जाता है जबकि यह दोनों वास्तविक रुप में अलगअलग श्रेणियों का प्रतिनिधित्व- करते हैं। नस्लीय समूह एक्स के सदस्य के रूप में, एक जातीय समूह में सदस्यता को समझा जाता है

पहचान के संदर्भ में अनुसंधान व मनोवैज्ञानिक अनुसंधान ने नस्ल से संबंधित पहचान के की भावनाओं और अतिथियों को व्यक्त करने के लिए का काफी प्रयास किया है। पहचान के अंतर्गत नस्लीय वर्गीकरण में भी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं व उनसे संबंधित पूर्वाग्रहों को भी देखा जा सकता है। इसमें पहचान में अध्ययन से फोर्डहम और ओगबू (1986) **पता लगाया है कि**, नस्लीय **पहचान** में और बाहर-समूहों के साथ अपनी संस्कृति के साथ उनकी जातीय पहचान और एकता बनाए रखने की इच्छा ,अफ्रीकी-अमेरिकी छात्रों के बीच अकादमिक विफलता का प्रतिनिधित्व करता है। पारस्परिक संघर्ष और व्यवहार के नकारात्मक मनोवैज्ञानिक परिणाम होते हैं। इस प्रकार अनुभूति और भावना से , व्यक्तियों के पूर्वाग्रहों को आकार दिया जा सकता है।

जाति एक सामाजिक स्तरीकरण का एक रूप है, जो कि वंशानुगत व्यवसाय, पदानुक्रम में स्थिति, और सामाजिक संपर्क और बहिष्कार शामिल होता है। भारत के प्राचीन इतिहास में समाज का कठोर सामाजिक समूहों में विभाजन है, भारतीय सामाजिक व्यवस्था कार्यों का निर्धारण किया गया आरंभिक दौर में यह व्यक्ति के स्वभाव, गुण, क्षमता के आधार पर निर्धारित किया जाता था परंतु समय बीतने के साथ यह गु ढ ,जटिल प्रक्रिया बन गई । जातीय पहचान एक व्यक्ति की व्यक्तिगत पहचान से अलग होती है, हालांकि दोनों एक दूसरे के साथ परस्पर-रूप से प्रभावित हो सकते हैं।

3. निम्न प्रकरण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:
   i. सामाजिक पहचान
   ii. राष्ट्रीय पहचान
   iii. लिंग पर आधारित पहचान

5.5 पहचान के विकास की आवश्यकता (Need of development of Identity)

मास्लो की (1 9 43, 1 9 54) आवश्यकताओं की पदानुक्रम मनोविज्ञान में एक प्रेरक सिद्धांत है जिसमें मानवीय जरूरतों के पांच स्तरीय मॉडल शामिल है।

मास्लो के अनुसार सौ लोगों में से केवल एक व्यक्ति पूरी तरह से आत्मनिर्भर हो जाता है, क्योंकि हमारे समाज में मुख्यतः सम्मान, प्रेम और अन्य सामाजिक आवश्यकताओं पर आधारित प्रेरणा होती है। पांच चरणों के मॉडल की मूल पदानुक्रम में शामिल हैं:

1. जैविक और शारीरिक आवश्यकताओं - हवा, भोजन, पेय, आश्रय, , ।
2. सुरक्षा की जरूरत -, सुरक्षा, कानून, स्थिरता, भय से स्वतंत्रता से सुरक्षा।
3. प्रेम और आत्मीयता की जरूरत - अंतरंगता, विश्वास और स्वीकृति, प्राप्त करने और प्यार देना।
4. एस्टीम - उपलब्धि, स्वामित्व, स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा, आत्म सम्मान।
5. आत्म-वास्तविकता की जरूरत - व्यक्तिगत क्षमता को साकार करना।

हमारी सबसे बुनियादी ज़रूरत शारीरिक अस्तित्व के लिए है, और यह हमारे व्यवहार को प्रेरित करने वाली पहली चीज होगी। एक बार उस स्तर को पूरा किया जाता है तो अगले स्तर ऊपर उठता है, जो हमें प्रेरित करता है। उच्च स्तरीय विकास की जरूरतों को पूरा करने के लिए आगे बढ़ने से पहले एक निचले स्तर के आवश्यकता को पूरा करना चाहिए। जब एक आवश्यकता को संतुष्ट हो जाता है, हमारी गतिविधियां अगले चरण की पूर्ति करने के लिए निर्देशित हो जाती हैं, जो अभी तक संतुष्ट नहीं हुई हैं। एक बार इन विकास की जरूरतों को संतुष्ट किया गया तो एक उच्चतम स्तर तक पहुंचने में हम सक्षम हो सकता है जिसे आत्म-वास्तविककरण कहते हैं। जीवन के अनुभव, एक व्यक्ति को पदानुक्रम के स्तरों के बीच उतार-चढ़ाव का कारण हो सकता है ।

संज्ञानात्मक आवश्यकताएं - ज्ञान और समझ, जिज्ञासा, अन्वेषण, अर्थ और पूर्वानुमान के लिए आवश्यकताएं।
सौंदर्य की जरूरत है - सौंदर्य, , प्रशंसा और खोज।
आत्म-वास्तविकता की जरूरत - व्यक्तिगत क्षमता, आत्म-पूर्ति, व्यक्तिगत विकास ।
उत्कृष्टता - स्वयं को आत्मिकरण प्राप्त करने में दूसरों की सहायता करना।

मास्लो स्वयं-वास्तविकरण के निम्नलिखित विवरण प्रदान करता है:

1. वे वास्तविकता को वास्तविकता मानते हैं; यह समस्या-केन्द्रित है।
2. निष्पक्ष जीवन को देखने के लिए ,स्वयं और दूसरों को जो वे हैं उनके लिए स्वीकार करने की प्रवृत्ति ।
3. मानवता के कल्याण के लिए चिंतित; मजबूत नैतिकता की भावना।
4. निष्पक्ष रचनात्मक जीवन को देखने के लिए सक्षम;
5. संतोषजनक पारस्परिक संबंध स्थापित करना;
6. अनुभव के आधार पर अपनी भावनाओं को संयमित करके सुनना और उसके अनुसार जिम्मेदारी लेने की भावना को विकसित करना।

लोग अपने स्वयं के तरीके से स्वयं-वास्तविकता प्राप्त करते हैं।मास्लो एक व्यक्ति की शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक और बौद्धिक गुणों और सीखने पर उनका प्रभाव कैसे होता है। कक्षा शिक्षक के काम के लिए मास्लो के पदानुक्रम सिद्धांत से स्पष्ट हैं, एक छात्र की संज्ञानात्मक जरूरतों को पूरा करने से पहले उन्हें अपनी मूल शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करना होगा। उदाहरण के लिए थके और भूखा छात्र सीखने पर ध्यान केंद्रित करना मुश्किल होगा - मूलभूत ज़रूरतें (भोजन, आश्रय); सुरक्षा; प्यार, समर्थन, आदर करना; और स्वायत्तता उन्होंने तीनों उपायों पर जीवन भर मूल्यांकन किया। हर रोज़ संपूर्ण रूप से अपने जीवन के बारे में एक व्यक्ति का दृष्टिकोण, सकारात्मक भावनाओं और नकारात्मक भावनाओं का अनुभव दु: ख, क्रोध, या तनाव शामिल किया हैं।

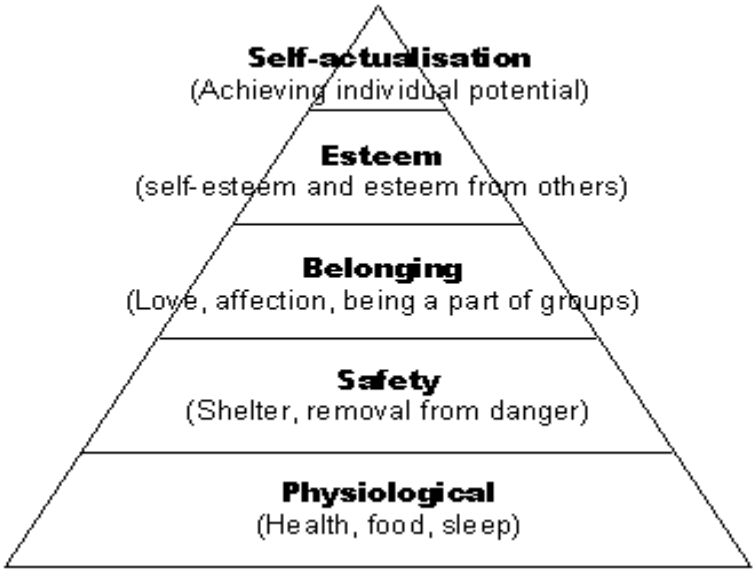

5.6 पहचान के विकास में बाधाएं Barriers in the development of identity

सीखने के लिए महत्वपूर्ण अवरोधों में शामिल हैं: भावनात्मक अवरोध ,अधिगमकर्ता से संबंधित अवरोध, वातावरण से संबंधित अवरोध, विद्यालय वातावरण से संबंधित अवरोध ।इन सभी का संक्षिप्त विवरण निम्न है:-

भावनात्मक अवरोध

- शिक्षार्थियों को लगता है कि उनका काम दूसरों के रूप में कभी भी उतना ही अच्छा नहीं होगा।

- भावनात्मक रूप से संवेदनशील सीखने वाले भावनाओं पर नियंत्रण खो सकते हैं।
- समायोजन अनुकूलन योग्यता(बदलने के लिए) के एक व्यक्ति की स्तर उनकी क्षमता और सीखने कीइच्छा पर प्रभाव डाल सकता है।
- एक लक्ष्य का अभाव लक्ष्य प्राप्त करने के लिए, आपको पहले यह जानना होगा कि वह लक्ष्य क्या है। स्पष्ट होना ज़रूरी है कि -"आप क्या चाहते हैं।"
- प्राथमिकता का अभाव-अधिकांश छात्रों अपना काम नहीं करने के लिए बहाना बनाते हैंमेरे " "पास पर्याप्त समय नहीं था।दिन में अलग-अलग समय निर्धारित करना महत्वपूर्ण है। किसी चार्ट को बनाने या अपने कार्य के लिए कैलेंडर तिथियों पर लिखने में सहायक होते हैं, असाइनमेंट या परीक्षण, अपने कैलेंडर पर नीचे चिह्नित करें कि आप कितना काम करते हैं या आपके पास क्या - क्या योजना है।
- सीखने के लिए सही माहौल होना महत्वपूर्ण है, सीखने के माहौल की व्यवस्था की -अध्ययन और होमवर्क करो एक शांत स्थान को अलग रखें।
- डिप्रेशन, डायस्कुल्यिया (जहां व्यक्ति को समझने में परेशानी है गणित),
- डिस्लेक्सिया (जहां व्यक्ति को लिखित शब्द को समझने में परेशानी होती है),डिस्ग्राफिया (जहां लिखने पर व्यक्ति को पत्र बनाने में परेशानी होती है) अन्य लोगों की तुलना में सीखने में अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है।
- सीखने की अयोग्यता- इसका मतलब यह है कि कुछ विद्यार्थियों(विकलांग) का सामना सीखने की अक्षमता से है। सीखने की अक्षमता का मतलब यह नहीं है कि कोई व्यक्ति विकलांग है, इसका मतलब यह है कि दूसरों की तुलना में स्कूल में पढ़ाई और व्यवहार करने में अधिक प्रयास करने के लिए प्रयास करने की आवश्यकता है।
- शिक्षकों और अन्य छात्रों के साथ-साथ कठिनाई हो रही है
- व्यवहार समस्याएं -सीखने के लिए एक प्रमुख भावनात्मक बाधा है, भय ,चिंता गुस्सा।
- सीखने के डर के पीछे सामना करने का डर महत्वपूर्ण है।
- आलोचना और न्याय का डर- स्कूल में छात्र अक्सर आलोचना से डरते हैं जो वे अपने शिक्षकों, सहपाठियों से या माता-पिता प्राप्त करेंगे।
- अवसाद
- छात्र निजी या स्कूल की समस्याओं के कारण बीमार हो रही है।
- असफलता का डर -अगर किसी छात्र को बार-बार स्कूल में असफलता का अनुभव होता है

- अस्वीकृति का डर-आलोचना या विफलता के डर के अलावा, बहुत से छात्र डरते हैं कि लोग उन्हें पसंद नहीं करेंगे।
- व्यवहार समस्याएं -सीखने के लिए एक प्रमुख भावनात्मक बाधा है, भय ,चिंता गुस्सा।
- डर की तरह, एक और भावनात्मक अवरोध है लज्जा, जो सीखने से रोकता है। कई छात्रों लगता है कि लोग क्या सोचेंगे वे इसलिए भी सफल होने की कोशिश नहीं करते। यह शायद सबसे आत्म-विनाशकारी बाधा है।
- छात्रों में विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व, ताकत और कमजोरियां हैं। छात्र खासकर भावनात्मक रूप से संवेदनशील हो सकते हैं। उनकी भावनाओं, ताकत को व्यवस्थित करने बदलने के लिए समायोजन परिवर्तन विशेष रूप से मुश्किल हो सकता है।

अधिगमकर्ता से संबंधित अवरोध

- बालक का शारीरिक व मानसिक रुप से स्वस्थ होना अति आवश्यक है। शारीरिक बीमारी या मानसिक परेशानी से स्वस्थ बालक सीखने में रुचि, ध्यान प्रभावित हो सकती है।
- बालकों में नए ज्ञान को प्राप्त करने के लिए जिज्ञासा\ सीखने की इच्छा का स्तर अच्छा होना चाहिए , जिससे वे कठिन ज्ञान को सरलता से प्राप्त करने का प्रयास कर सकें। बालको को सक्रिय रखने वाली अधिगम विधि जोकि रुचिब द्ध होने के साथ-साथ उन्हें प्रभावित भी करें।
- अभिप्रेरणा के द्वारा बालक को कठिन से कठिन बात को भी सहज और सरल ढंग से बताया जा सकता है
- बालक की अधिगम पर वंशानुक्रम द्वारा अनेक गुण ,क्षमताओं और विशेषताओं का प्रभाव पड़ता है।
- मानसिक व शारीरिक दृष्टि से निर्धारित क्रियाएं व ज्ञान छात्रों की आयु व मानसिक स्तर के अनुरूप होनी चाहिए। अगर बालक अपरिपक्व है ,तो उस दशा में शिक्षक के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं।

  विद्यालय वातावरण से संबंधित अवरोध

- छात्रों के सीखने के लिए विद्यालय में अच्छे वातावरण जिसमें समुचित वायु एवं प्रकाश की व्यवस्था हो, पुस्तकों ,शिक्षण सामग्री पर्याप्त हो, वातावरण शांत हो , अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए। जिससे बालक ध्यानपूर्वक सीखने की प्रक्रिया पर ध्यान दे सके।
- अध्यापक को मनोविज्ञान से संबंधित ज्ञान होना आवश्यक नितांत आवश्यक है। इसके अलावा उन्हें अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता होना चाहिए ,जिससे आत्मविश्वास से बालक को नवीन ज्ञान प्रदान कर सके।

- छात्र की रुचि ,अभिरुचि, योग्यता, क्षमता, (व्यक्तिगत भिन्नता) को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।
- विभिन्न छात्रों के प्रति अध्यापक का व्यवहार प्रेम ,सहयोग सहानुभूति से भरा हुआ होना चाहिए उनमें छात्रों में पढ़ने के प्रति रुचि विकसित करने की तीव्र इच्छा होनी चाहिए।
- भिन्न भिन्न विषयों के कठिनाई स्तर में भिन्नता होती है। सभी छात्रों को समान रूप से सब कुछ सिखा पाना मुश्किल है, और साथ में अगर विषय वस्तु रुचि के अनुरूप होनी चाहिए।
- विषय वस्तु की प्रकृति , आकार दोनों ही बालक की अधिगम प्रक्रिया पर विपरीत प्रभाव डाल सकते हैं। अगर विषय वस्तु मुश्किल है, तो छात्रों को परेशानी का सामना करना पड़ सकता है।

वातावरण से संबंधित अवरोध

- बालक के अधिगम में पारिवारिक वातावरण महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जिन परिवारों में वातावरण अच्छा नहीं है, बालको की अधिगम गति बहुत कम होती है क्योंकि अच्छा वातावरण बच्चों को रुचि लेने व कठिन परिस्थितियों को भी सरलता से पार करना सिखाता है।
- सांस्कृतिक व सामाजिक वातावरण बच्चों को नियमों ,विचारों विश्वास से परिचित करवाता है, जिसमें वह अपना पूरा जीवन व्यतीत करते हैं। सांस्कृतिक व सामाजिक वातावरण उनकी अधिगम को बहुत अधिक प्रभावित करता है।
- स्कूल अथवा घर में भौतिक वातावरण अगर उपयुक्त ना हो तो छात्र बच्चे थकान का अनुभव करने लगेंगे। सीखने की प्रक्रिया काफी बोझिल हो सकती है । इससे अरुचि की भावना उत्पन्न हो सकती है । इसलिए भौतिक वातावरण(तापमान, प्रकाश , शांति, हवा की व्यवस्था) अच्छी होनी चाहिए, जिससे सीखने का अच्छा वातावरण तैयार हो सके।
- छात्रों में अधिगम प्रक्रिया सुचारु रुप से चलाने के लिए उचित मनोवैज्ञानिक वातावरण को तैयार करना बहुत जरूरी है। इसके अंतर्गत छात्रों के मध्य परस्पर सहयोग, सद्भाव और अच्छे संबंध उत्पन्न करना बहुत ही जरूरी है। इसके पश्चात एक अच्छा वातावरण जहां पर उचित रूप से शिक्षा प्रदान की जा सकती हो ,तैयार किया जा सकता है।

5.7 पहचान के विषय में जागरूकता लाने में शिक्षक की भूमिका (Role of teacher in facilitating Identity)

जॉन ऐडम्स के अनुसार " अध्यापक ही व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व का निर्माण एवं विकास का प्रमुख आधार है। बिना शिक्षक की सक्रिय सहभागिता के किसी राष्ट्र का वर्तमान एवं भविष्य का निर्माण एवं विकास संभव नहीं है"

सुप्रसिद्ध शिक्षाविद रविंद्रनाथ टैगोर ने शिक्षक के लिए "जलते हुए दीपक" की संज्ञा दी है क्योंकि छात्रों के अंदर विद्यमान योग्यताओं व क्षमताओं का विकास एक योग्य शिक्षक ही कर सकता है। मानव जाति एक समूह है जो कि साथ मिलकर एक समाज का निर्माण करती है ।

बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र की कंवेंशन में यह कहा गया कि- सभी बच्चों को ऐसी शिक्षा का अधिकार है जो उनके जीवन के लिए एक आधार का निर्माण करती है, उनके अंदर की क्षमता को अधिक बढ़ाती है, उनकी पारिवारिक, सांस्कृतिक और अन्य पहचान और भाषा का सम्मान करती है। बच्चों के खेलने के अधिकार और अपने जीवन को प्रभावित करने वाले सभी मामलों में सक्रिय भागीदारी निभाने के अधिकार को भी मान्यता देती है।

बच्चे जन्म से ही अपने परिवार, आस-पड़ोस, समाज व संस्कृति से जुड़ते चले जाते हैं ।उनकी आरंभिक विकास की अवस्था में माता-पिता परिवार के अन्य सदस्य ,बड़े-बुजुर्ग , पड़ोसी भी प्रभावशाली शिक्षक के रूप में उभरकर हमारे समक्ष आते हैं। जैसे- जैसे बालक बड़ा होता है जीवन में उसकी सक्रिय सहभागिता बढ़ती जाती है, वह स्वयं की अभिरुचियों और क्षमताओं से अवगत होता है।

स्वयं को पहचाने की प्रक्रिया बहुत जटिल होती जाती है दुनिया को देखने और समझने का उनका नजरिया भी विकसित व विस्तृत होता जाता है। यहां इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि बच्चा अपने साथ हो रहे व्यवहार, अपनापन, लोगों का लोगों के साथ आपसी व्यवहार व संपर्क सभी पर ध्यान देता है। उसके आसपास का सांस्कृतिक- सामाजिक तानाबाना उसके भावी जीवन कि आधारशिला का निर्माण करता है। इसलिए यह जरुरी है कि हम कि अपनेपन, उसकी जिज्ञासा, अभिरुचियों के अनुसार उसके संसार का निर्माण कर, बच्चों को जीवन में चुनौतियों, संघर्ष, खुशी ,समस्याओं के साथ आपसी संबंधों को प्रगाढ़ बनाने के लिए तैयार करना आवश्यक है।

वर्ष बीतने के साथ उसके मस्तिष्क के अंदर बहुत से बदलाव होते रहते हैं जिसमें कि समझ, ज्ञान, कौशल पहचान सभी में परिवर्तन आता है। वह विभिन्न घटनाओं को जोड़कर परिस्थितियों के अनुरूप निष्कर्ष निकालने का प्रयास भी करने लगता है ।

- सीखने की इस प्रक्रिया में उस का वातावरण ब समायोजन शक्ति उसका सहयोग करती है। बच्चों के लिए पाठ्यक्रम बनाते समय उनमें सिद्धांत, कार्य प्रथा , प्रशिक्षण के परिणाम को ध्यान में रखते हुए उन तत्वों को शामिल किया जाना चाहिए।

- पाठ्यक्रम में बच्चों से संबंधित शिक्षण उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए **(सक्रिय शिक्षण पर्यावरण)** सभी नियोजित - अनियोजित अंतर व्यवहार, दिनचर्या, उनके अनुभव को शामिल करते हुए उनके दुनियादारी को समझने के तौर-तरीकों को ध्यान में रखते हुए शिक्षक को अपने **(शिक्षा-शास्त्र)** ज्ञान का प्रयोग करना चाहिए।
- बच्चों को शिक्षा प्रदान करने समय परिवार के साथ साझेदारी बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि इसके द्वारा बच्चे की उत्सुकता, रचनात्मकता, व्यक्तित्व, विशिष्टता, , पूर्व के अनुभव व अपने अनुभवों को समायोजित करने के तौर-तरीकों पर उचित प्रकाश डाला जा सकता है। बच्चों में सीखने, नेतृत्व करने, निर्णय लेने, सक्रिय भागीदारी करने की क्षमताओं को पहचानना बहुत आवश्यक है।
- बच्चों में पहचान की मजबूत भावना को विकसित करना इसके लिए उनके सकारात्मक अनुभव का बनना बहुत जरूरी है जिसमें वह स्वयं को महत्वपूर्ण और सम्मानजनक महसूस करें। संबंध पहचान के निर्माण में अपनेपन की भावना, बच्चों के पूछे गए विभिन्न प्रश्नों का सही उत्तर देना भी जरूरी है। बच्चों को खेलना ,आपसी संबंधों के माध्यम से जब बच्चे स्वयं को सुरक्षित व सामाजिक महसूस करते हैं तो वह और भी आत्मविश्वास से भर जाते हैं ।विभिन्न खेल आपसी संबंधों के माध्यम से स्वयं के विषय में विभिन्न पहलुओं शारीरिक, मानसिक, सामाजिक भावनात्मक, आध्यात्मिक, संज्ञानात्मक परिस्थितियों के अनुरूप निष्कर्ष निकालने का प्रयास भी करने लगता है।
- शिक्षक को बच्चों के साथ संवेदनशीलता भरा व्यवहार करना चाहिए , बच्चों के विचारों संकेतों को स्वीकार करना, जिससे बच्चे सुरक्षित महसूस करें। सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश मैं ,सीखने के दृष्टिकोण, पालन तंत्र पर भी ध्यान देना आवश्यक रहेगा। बच्चों को कार्य में स्वतंत्र रुप से संलग्न करने, जब उचित हो उन्हें प्रोत्साहित करने व उनके प्रयासों का समर्थन करते रहे, बच्चों को व्यक्तिगत व सहयोगी दोनों प्रकार की गतिविधियों में शामिल होने के लिए समय व स्थान उपलब्ध करवाते रहना।
- बच्चे खुद की प्रमाणिक समझ विकसित करने के लिए सक्रिय रुप से लगे रहते हैं इसलिए शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह बच्चों को सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश से जुड़ने के लिए समृद्ध व विविध संसाधन उपलब्ध करवाएं। उसके पश्चात बच्चे संसाधन का कई अलग-अलग तरह तरीकों से अर्थ का निर्माण करते हैं।
- बच्चों के साथ बातचीत करके उन्हें सामाजिक अनुभवों में शाम करने के साथ जटिल संबंधों, वैकल्पिक दृष्टिकोण हो, सामाजिक समावेशन के विचार को बढ़ावा देने के संवेदनशील तरीकों पर विचार किया जाना चाहिए। इसके लिए शिक्षक ऐसा वातावरण बनाए जो सुखद, देखभाल पूर्ण और सम्मानजनक संबंधों का अनुभव करते हैं।

- शिक्षक स्थानीय समुदाय की सहभागिता से विचारों को व्यक्त करने, व्यवहारिक परिस्थितियों, लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सहयोग की भावना विकसित करने का प्रयास करें ।बच्चों के लिए सामूहिक चर्चा , नियमों व अपेक्षाओं के बारे में खुलकर सार्थक तरीके से बातचीत करके योजनाओं का निर्माण किया जाए।
- शिक्षक उन विशेषताओं की सराहना करें जो एक व्यक्ति को विशेष(नाम, आकार, लिंग) बनाते हैं। वे अपनी आवश्यकताओं, रुचियों और क्षमताओं के साथ दूसरों से अलग हैं।'वे कौन हैं' की भावना ,उनकी पृष्ठभूमि, ताकत और क्षमताओं का वर्णन करने में सक्षम हैं अपने विचारों, प्राथमिकताओं और ज़रूरतों को व्यक्त करते, दूसरों के साथ सम्मानजनक रिश्तों का निर्माण करने में सक्षम हैं।
- बच्चों को यह एहसास होना चाहिए कि उनके पास एक जगह है, उनके परिवार और समुदाय के सदस्य सकारात्मक ,परिवार संरचना, संस्कृति और पृष्ठभूमि की विविधता , रीति-रिवाजों, त्यौहारों और समारोहों में हिस्सा लें।
- बच्चे अपने अधिकारों को व्यक्त करने, नियमों और न्याय की भावना और अनुचित व्यवहार के साथ पहचान,सहयोग के कौशल, जिम्मेदारी, बातचीत, की सीमाओं को समझें, दूसरों के विचारों के लिए समझ और सम्मान दिखाने में सक्षम होंगे। **सामुदायिक सहभागिता** का अनुभव, सीखने के अवसर, जो उनके घर, समुदाय और संस्कृति से जुड़ा हुआ है।
- बच्चों को बच्चों के परिवारों, घरों, पालतू जानवरों के चित्र के साथ 'मेरे बारे में' सभी पोस्टर बनाने के लिए , पसंदीदा खिलौने और गतिविधियों, के बारे में बात करें। खेल, जानवरों, कारों, नृत्य, गायन, कंप्यूटर, संख्यात्मक खेल के लिए व्यक्तिगत शक्तियों और हितों, संगीत बनाने, रचनात्मक गतिविधियों, नृत्य, नाटक और नाटक खेलने में भाग लेने वाले बच्चों के वीडियोरिकॉर्डिंग , उनके परिवारों के साथ साझा करना है।
- छोटे बच्चों के साथ अनुभव साझा करने और दूसरों को सुनने के लिए प्रोत्साहित करता है। बच्चों को निर्णय लेने जैसे सामुदायिक गतिविधियों में भाग,समुदाय में स्थानों का दौरा, बातचीत की सुविधा देता है, आगंतुकों के प्रश्न पूछने के लिए बच्चों को प्रोत्साहित करता है।
- समुदाय में लोगों की भूमिका जैसे --- कि एक नर्स, अधिकारी, एक शिक्षक, 'हमारा समुदाय' - जिसमें मस्तिष्क, महल या पहाड़ जैसी महत्वपूर्ण विशेषताओं की तस्वीरों के साथ स्थानीय क्षेत्र के नक्शे या पोस्टर बनाने के लिए जाना ।
- आईसीटी उपकरण जैसे स्कैनर, डिजिटल कैमरा, इंटरैक्टिव सफ़ेद बोर्ड या स्लाइड शो, जो उनके समुदाय के बारे में जानकारी इकट्ठा और प्रदर्शित करते हैं ।
- बच्चों को जगह की भावना और उस जगह की देखभाल करने की एक जिम्मेदारी विकसित करने में मदद करता है, उदाहरण के लिए, कमरे में उनकी जगह की देखभाल करना, उनकी चीजों

को सुव्यवस्थित रखते हुए किसी विशेष क्षेत्र की ज़िम्मेदारी जैसे - कपड़ों को तैयार करना, फूलों के लिए रोपण करना और देखभाल करना।

5.8 सारांश

पहचान की अवधारणा इन दशकों में काफी परिवर्तित हुई है। इसके अंतर्गत एक सामाजिक श्रेणी, सदस्यता, नियम, विशेषताएं, व्यवहार सभी को शामिल किया गया हैं। पहचान को दो स्तर में विभाजित किया गया है---- व्यक्तिगत पहचान व सामाजिक पहचान ।

पहचान के रूप में लिंग, कामुकता, नागरिकता, जाति, वर्ग, जातीय की सांस्कृतिक और अन्य सामाजिक श्रेणियां ,कुछ महत्वपूर्ण अपवादों के साथ, पहचान एक व्यक्ति के अपरिवर्तनीय लेकिन, आत्म सम्मान या गरिमा की भावना के स्रोत स्पष्ट रूप से प्रासंगिक हैं । पहचान के विकास और परिवर्तन के अन्य रूप अधिक सूक्ष्म हैं। कई दशकों सेमहत्व का पहचान ,, पहचान परिवर्तन , के रूप बदलाव हो सकता है। पहचान को किसी के संबंध में बदलाव की आवश्यकता होती है। व्यक्तिगत पहचान मौलिक नैतिक अभिविन्यास है , इसलिए यह बहुत संकीर्ण है। सामाजिक पहचान का सामाजिक परिवेश है। सामाजिक पहचान में बदलावों के अलावा ,जो समय के साथ विकसित होता है, अक्सर काफी बदलता है। सामाजिक पहचान की अभिव्यक्ति में उतार-चढ़ाव हो सकता है,अलग विशेषताओं और व्यवहारों द्वारा , तो हमउन तरीकों पर विचार करने की जरूरत है जिसमें लोग बदलाव कर सकते हैं। पहचान को स्थापित करने में शिक्षक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। एक शिक्षक को सक्रिय शिक्षण पर्यावरण, सामुदायिक सहभागिता, समावेशन और अन्य प्रौद्योगिकियों की मदद से बालकों के सुदृढ़ कल्याण की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण कार्य करना पड़ता है। एक बदलते परिवेश में पहचान अलगअलग रूपों में हमारे समक्ष आ सकती हैं- - यह व्यक्तिगत भी हो सकती है और सामाजिक पहचान की अन्य रूपों में भी दिखाई दे सकती है क्योंकि जीवन के अलगअलग पक्षों में हम - अपने परिवार, कार्यस्थान , मित्रों, पड़ोसियों सभी के साथ अलगअलग व्यक्तित्व के मापदंडों को लेकर - जीवन का निर्वहन करते हैं।

5.9 शब्दावली

1. **सक्रिय शिक्षण पर्यावरण:** सक्रिय सीखने के माहौल में बच्चों को अपने अनुभवों, सामाजिक संबंधों के माध्यम से अर्थ औरज्ञा न निर्माण करने के लिए पर्यावरण के साथ प्रोत्साहित किया जाता है।शिक्षक बच्चों को गहरे अर्थ खोजने और विचारों ,अवधारणाओं, और प्रक्रियाओं के बीच संबंध बनाने के लिए प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

2. **अभ्यस्तता:** "अभ्यस्तता में संलग्नता के क्षणों में मनोस्थितियों का संरेखण करना शामिलहै, जिसके दौरान चेहरे की अभिव्यक्ति, ध्वनि करणों, शारीरिक संकेतों औ रआँख के संपर्क के साथ प्रभाव संचारित किया जाता है।" (सीगल, 1999)।
3. **सामुदायिक सहभागिता:** समुदायों की सक्रिय भूमिका।
4. **पाठ्यक्रम:**'बच्चों की शिक्षा और विकास को बढ़ावा देने के लिए तैयार वातावरण में होनेवाले सभी नियोजित और अनियोजित संपर्क, अनुभव, गतिविधियां, चर्याएं और घटनाएं'। [तेव्हारि की से अनुकूलित]।
5. **समावेशन:** इसमें सभी बच्चों की सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषाई विविधता (योग्यताओं, विकलांगताओं, लिंग, परिवार के हालातऔरभौगोलिक स्थान सहित) को ध्यान में रखकर निर्णय लेने की प्रक्रिया शामिल है ।इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी बच्चों को संसाधनों और भागीदारी औरअपने सीखने का और विविधता को प्रदर्शन करने के अवसर प्राप्त हों।
6. **साक्षरता:** साक्षरता में पढ़ना ,लिखना ,संगीत, शारीरिक गतिविधियां, नृत्य, कहानीसुनाना, दृश्यकला, मीडियाऔरनाटक, बातकरना,शामिल होते हैं।
7. **शिक्षा-शास्त्र:** प्शिक्षकों का अभ्यास, विशेष रूप से जिसमें संबंधों के निर्माण और पोषण, पाठ्यक्रम से संबंधित निर्णय लेने, शिक्षण और सीखने के पहलू शामिल होते हैं।
8. **खेल-आधारित शिक्षण**: सीखने की वह प्रक्रिया है , जिसके माध्यम से बच्चे लोगों, वस्तुओं के साथ सक्रिय रूप से संलग्न होकर अपनी सामाजिक दुनिया को व्यवस्थित करसमझने के लिए प्रयास करते हैं।
9. **प्रौद्योगिकियाँ:** कंप्यूटर और सूचना, संचारऔर मनोरंजन के लिएइस्तेमाल की जाने वाली डिजिटल तकनीक शामिलहै।
10. **लिखित सामग्री:** जिन्हें हम पढ़ते, देखते औरसुनतेहैं, उदाहरणार्थ पुस्तकें, पत्रिकाएं और पोस्टर, या स्क्रीन-आधारित हो सकती हैं, उदाहरणकेलिएइंटरनेट साइटेंऔरडीवीडी।
11. **कल्याण:** सुदृढ़ कल्याण बुनियादी आवश्यकताओं (इसमें खुशी और संतुष्टि, सामाजिक कार्य-कलापऔर आशावाद, खुलेपन, जिज्ञासा और लचीलेपन) के स्वभाव शामिल हैं।

5.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शास्त्री विपिन, एजुकेशनल साइकोलॉजी(2009), पेसिफिक पब्लिकेशन दिल्ली

2. डॉक्टर सिंह, मायाशंकर, अध्यापक शिक्षा: गुणात्मक विकास(2007), अध्ययन पब्लिक एंड डिस्ट्रीब्यूटर दिल्ली
3. डॉक्टर पचौरी, गिरी, शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार (2009) आर लाल बुक डिपो मेरठ
4. सिंह, अरुण कुमार ,शिक्षा मनोविज्ञान(2003), भारती भवन एंड डिस्ट्रीब्यूटर पब्लिशर्स
5. Howard, Judith A , Annu.Rev.Social. 2000.26; 367-93, Dept of Sociology, University of Washington, Seatle, Washington 98195.
6. Handbook of Self And Identity Edited by Mark R.Leary,June Price Tangney,2012,The Guilford Press New York London.
7. file:///C:/Users/User/Downloads/ECSEC02_Identity-and-belonging.pdf
8. file:///C:/Users/User/Downloads/GPP3O1-IdentifyingBarrierstoEffectiveLearningReadingMaterial.pdf
9. file:///C:/Users/User/Downloads/Rodgers_and_Scott_2008_The_development_o.pdf
10. file:///C:/Users/User/Downloads/What-is-Identity-as-we-now-use-the-word-.pdf

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. पहचान की अवधारना से आप क्या समझते हैं? पहचान के विकास के अवस्थाओं पर पर प्रकाश डालें।
2. पहचान के विभिन्न प्रकार को अपने शब्दों में व्यक्त करें।
3. वर्तमान परिपेक्ष्य में पहचान के महत्व पर अपने विचार व्यक्त करें।
4. छात्रों में पहचान को स्थापित करने में शिक्षक की भूमिका का विस्तार पूर्वक समझाएं।

खण्ड 2

Block 2

इकाई 1 - व्यावसायिक पहचान और उस पर पड़ने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक प्रभाव

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 पहचान क्या है ?
    1.3.1 पहचान का अर्थ
    1.3.2 सामाजिक व निजी पहचान
    1.3.3 पहचान की परिभाषाएं
    1.3.4 स्व, स्व-धारणा व पहचान में सम्बन्ध
1.4 पहचान अवधारणा से सम्बंधित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त
    1.4.1 एरिक्सन के मनो-सामाजिक सिद्धान्त में पहचान की भूमिका
    1.4.2 पहचान के सम्बन्ध में मर्शिया के विचार
1.5 व्यावसायिक पहचान
    1.5.1. व्यावसायिक पहचान का अर्थ
    1.5.2 पहचान और व्यवसायिक पहचान में भेद
1.6 व्यावसायिक पहचान निर्माण में सामाजिक-सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक रूप से पड़ने वाले प्रभाव
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 सन्दर्भ सूची
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

स्व को समझने के सम्बन्ध में यह इकाई पहचान और विशिष्ट रूप से व्यावसायिक पहचान के बारे में है। इससे पहले के खंड में आपने स्व को विस्तार से जाना होगा और उस पर मनन किया होगा।

पहचान के विषय में पढ़ते हुए आप पाएंगे कि यह मनोवैज्ञानिक आयाम से सम्बंधित होने के साथ साथ कई अन्य आयाम जैसे सामाजिक-सांस्कृतिक, ऐतिहासिक व राजनैतिक आयामों से भी प्रभावित होती है।

प्रस्तुत इकाई में व्यावसायिक पहचान के अर्थ , एक शिक्षक या शिक्षिका की व्यावसायिक पहचान और यह पहचान किस प्रकार विभिन्न आयामों जैसे सामाजिक-सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक से कैसे प्रभावित होती है इसको विस्तार से जानेंगे।

इस इकाई के पश्चात् आप पहचान व व्यावसायिक पहचान का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन व विश्लेषण कर सकेंगे । साथ ही एक शिक्षक या शिक्षिका के रूप में स्वयं की व्यावसायिक पहचान को भी समझ सकेंगे ।

1.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

1. समझ सकेंगे कि पहचान क्या है और यह स्व व स्व- धारणा से कैसे अलग है?
2. पहचान के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त व विषयवस्तु को जान सकेंगे
3. व्यावसायिक पहचान की अवधारणा को समझ सकेंगे ।
4. पहचान व व्यावसायिक पहचान के बीच का सम्बन्ध बता सकेंगे।
5. विश्लेषण कर पाएंगे कि पहचान सामाजिक- सांस्कृतिक, ऐतिहासिक व राजनैतिक रूप से किस प्रकार प्रभावित होती है
6. शिक्षक या शिक्षिका के दृष्टिकोण से व्यावसायिक पहचान पर गहन चिंतन कर सकेंगे ।

1.3 पहचान क्या है ?

आप पिछले खंड में पहचान के बारे कुछ समझ बना ही चुके होंगे। इस भाग में आप पहचान के अर्थ को जानेंगे और विभिन्न सिद्धांतविदों के द्वारा दी गई परिभाषाओं के माध्यम से पहचान की समझ को सुदृढ़ करेंगे। साथ ही आप इस भाग में स्व, स्व -धारणा और पहचान के बीच सम्बन्ध को भी जानेंगे।

1.3.1 पहचान का अर्थ

पहचान शब्द का जिक्र होते ही जो सवाल प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख आ खड़ा होता है वह है ' मैं कौन हूँ ?' इस सवाल का जवाब ढूंढने की कोशिश में व्यक्ति जिस प्रक्रिया से होकर गुजरता है वह उसे उसकी पहचान तक ले आती है । इस प्रक्रिया में व्यक्ति कई प्रकार से अपनी पहचान से रूबरू होता है । जैसे शारीरिक रूप से व्यक्ति की पहचान लंबा- छोटा, मोटा - पतला, काला- गोरा आदि से हो सकती है, जाति के रूप में पहचान जाट, पंडित, कुम्हार आदि से हो सकती है , लिंग के आधार पर पहचान लड़की , लड़का, आदमी व औरत के रूप में हो सकती है, उम्र के आधार पर पहचान बच्चे , वयस्क और बूढ़े के रूप में हो सकती है और व्यवसाय जैसे डॉक्टर, इंजीनियर और शिक्षक आदि के रूप में भी उसकी पहचान होती है । शारीरिक बनावट, जाति, उम्र,लिंग, व्यवसाय आदि जैसे कई आधारों पर पहचान का निर्माण संभव है ।

1.3.2 सामाजिक व निजी पहचान

पहचान को वर्तमान समय में प्रयोग के आधार पर 'सामाजिक' व 'निजी' पहचान के सन्दर्भ में जोड़ कर देखा जा सकता है। ' सामाजिक' पहचान एक प्रकार के सामाजिक विभाग को बताती है जिसमें व्यक्तियों के एक समूह को एक नाम दिया जा सकता है। उस समूह के अपने कुछ नियम व कुछ विशेषताएं होती हैं। इस समूह के सदस्य को उस सामाजिक समूह की पहचान द्वारा जाना जाता है। निजी पहचान किसी व्यक्ति की उन विशेषताओं से होती है जो उसे किसी सामाजिक समूह के अन्तर्गत होते हुए भी उस समूह के अन्य सदस्यों से अलग करती है। अतः पहचान को हम इस दोहरे अर्थ में समझ सकते हैं जहाँ एक ओर यह सामाजिक विभाग है और उसी के साथ दूसरी ओर व्यक्तिगत स्व सम्मान का स्रोत है। उदाहरण के रूप में, भारतीय सन्दर्भ में यदि हम गरीबी रेखा से नीचे आने वाले लोगों के समूह की बात करें तो उन्हें बी.प.एल. समूह के नाम से पहचाना जाता है जो सामाजिक पहचान के रूप में समझा जा सकता है। वहीँ हम इस समूह में से किसी एक ऐसे बच्चे की बात करे जो अपनी जान जोखिम में डाल कर किसी की जान बचाता है और उसके लिए सरकार उसे सम्मानित करती है तो वह पहचान उस बच्चे की व्यक्तिगत पहचान हुई जो उसने अपनी प्रतिभा के आधार पर बनायीं है। अगले भाग में आप पहचान की कुछ परिभाषाओं को जानेगें।

1.3.3 पहचान की परिभाषाएं

उपरोक्त अनुच्छेद में आपने पहचान को सामाजिक व निजी पहचान के रूप में समझा 'पहचान' की विभिन्न सिद्धांतविदों के शब्दों में परिभाषाएं निम्न प्रकार हैं :

1. पहचान से अभिप्राय व्यक्तिगत सहजप्रवृति, योग्यताओं, धारणाओं व इतिहास का निरन्तर रूप से स्व के बिम्ब में संगठित होना है। इसके अन्तर्गत सोचे समझे विकल्प व निर्णय शामिल हैं जो कार्य, मूल्यों, विचारधाराओं व लोगों के लिए प्रतिबद्धता के बारे में है। (मारसिया, 1987)
2. पहचान का अर्थ उन गुणों, धारणाओं, व्यक्तित्व व अभिव्यक्तियों से है जो किसी व्यक्ति या समूह को बनाते हैं। पहचान निर्माण की यह प्रक्रिया रचनात्मक व विध्वंसक हो सकती है। (जेम्स पॉल, 2014)

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पहचान वह अवधारणा है जो आप समय के साथ साथ अपने बारे में बनाते हो। इसके अन्तर्गत आपके जीवन का वह भाग भी है जिस पर आपका नियंत्रण नहीं है जैसे आपकी शारीरिक वृद्धि व त्वचा का रंग। इसके साथ ही वह भाग भी है जो आप अपनी मर्जी से चुनते हो जैसे आप कैसे अपना समय बिताना चाहते हो और किसमे विश्वास करते हो।

1.3.4 स्व, स्व-धारणा व पहचान में सम्बन्ध

उपरलिखित शब्दों को अक्सर लोग पर्यायवाची की भांति प्रयोग करते हैं परंतु इनके बीच के सम्बन्ध को जान कर ही हम पहचान के वास्तविक अर्थ को समझ सकते हैं। उपरोक्त लिखे शब्द मुख्य रूप से निजी पहचान से सम्बंधित है। 'स्व' का अर्थ किसी व्यक्ति की उसके वास्तविक स्व से हैं जो वह स्वयं के बारे में जानता है और इसमें व्यक्ति की असल क्षमताएं व योग्यताएं शामिल हैं।

स्व-धारणा वह प्रत्यय है जो एक व्यक्ति दूसरों से मिली प्रतिक्रियाओं के आधार पर स्वयं की समझ बनाता है। उदाहरणार्थ, यदि किसी व्यक्ति की बार बार लोग एक अच्छे गणितज्ञ के रूप में प्रशंसा करते हैं तो

उसकी स्व धारणा में गणितज्ञ होना एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। भले ही वह व्यक्ति भाषा व विज्ञान समान रूप से समझ व समझा सकता है परंतु उसकी स्व धारणा में वह स्वयं को एक गणितज्ञ के रूप में देखता है। एक प्रसिद्ध समाजशास्त्री कूले (Cooley) ने स्व धारणा को ही 'लुकिंग ग्लास सिद्धान्त' (Looking Glass Theory) के नाम बताया है । उनके अनुसार हम स्वयं को उस ग्लास में से देखते हैं जो सामाजिक सन्दर्भ में दूसरों के साथ अंतक्रिया से निर्मित हुआ है।

पहचान की बात करते समय हम पाते हैं कि इसमें स्व और स्व धारणा शामिल होने के साथ स्व-मूल्यांकन जैसे अन्य प्रत्यय भी सम्मिलित हैं जिनका विस्तार से वर्णन हमने यहाँ नहीं किया है। पहचान का अर्थ कई बार स्व धारणा के कुछ हिस्से की समझ बनाने के सन्दर्भ में भी किया जाता है। अगले बिंदु में हम पहचान के मनोवैज्ञानिक आयाम को समझेंगे और यह भी जानेंगे कि पहचान का विकास किस प्रकार होता है।

1.4 पहचान अवधारणा से सम्बंधित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

किसी अवधारणा की समझ तब तक अधूरी है जब तक उसको किसी सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से न देखा जाए। अभी तक आप 'पहचान' के अर्थ, उसकी परिभाषा और स्व व स्व धरना से उसके सम्बन्ध को जान चुके हैं। इस भाग के अन्तर्गत आप उन मनोवैज्ञानिक सिदाँतविदो के विचारों को जानेंगे जिन्होंने पहचान व पहचान निर्माण के विषय में बात की है। पहचान संबंधी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों में हम मुख्य रूप से एरिक्सन व मर्शिया के पहचान निर्माण संबंधी विचारों से अवगत होंगे।

1.4.1 एरिक्सन के मनो-सामाजिक सिद्धान्त में पहचान की भूमिका

व्यक्तित्व विकास में एरिक एरिक्सन द्वारा दिया गया मनो-सामाजिक सिद्धान्त काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उन्होंने व्यक्तित्व विकास के सम्बन्ध में लाइफ लॉन्ग अर्थात जन्म से मृत्यु के समय तक का सिद्धान्त दिया है। उन्होंने अपने मनो- सामाजिक सिद्धान्त को आठ अवस्थाओं में बांटा है। उनका मनो-सामाजिक सिद्धान्त व्यक्तित्व विकास के कई आयामों पर जोर देता है जैसे स्व का उत्थान, पहचान के लिए खोज, दूसरों के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध और सम्पूर्ण जीवन में संस्कृति की भूमिका आदि। एरिक्सन द्वारा दी गई मनो- सामाजिक सिद्धान्त की अवस्थाएं एक दूसरे पर आधारित हैं । आगे आने वाली अवस्थाओं की उपलब्धि इस बात पर निर्भर करती है कि पिछली अवस्थाओं में द्वन्द किस प्रकार सुलझाए गए हैं। एरिक्सन के अनुसार, प्रत्येक अवस्था पर व्यक्ति एक विकासात्मक संकट का सामना करता है। यह विकासात्मक संकट एक प्रकार का द्वन्द है जिसमें एक ओर सकारात्मक चुनाव है और दूसरी ओर तुलनात्मक रूप से हानिकारक चुनाव है। जिस प्रकार से व्यक्ति इस द्वन्द को सुलझाता है उसका असर व्यक्ति के स्व-बिम्ब (Self Image) व समाज के प्रति उसके नजरिये पर पड़ता है। एरिक्सन ने पहचान के विषय में बात अपने मनो-सामाजिक सिद्धान्त की पांचवी अवस्था पहचान बनाम भूमिका की अस्पष्टता (Identity vs Role Confusion) में की है।

यह अवस्था व्यक्ति की किशोरावस्था के दौरान आती है। जिस तरह किशोरावस्था को जीवन का एक संवेदनशील पड़ाव माना जाता है उसी तरह से यह अवस्था व्यक्ति की पहचान निर्माण में मुख्य भूमिका

निभाती है। किशोरावस्था का केंद्रीय बिंदु पहचान का निर्माण ही है जो आगे चलकर युवावस्था को एक सुदृढ़ आधार प्रदान करता है। एक व्यक्ति शैशवावस्था से ही स्व का निर्माण निरंतर रूप से करता रहता है। लेकिन किशोरावस्था में पहली बार वह 'मैं कौन हूँ?' प्रश्न का उत्तर ढूंढने का जागरूक प्रयास करता रहता है। इस अवस्था में आने वाले द्वन्द को ही एरिक्सन ने पहचान बनाम भूमिका अस्पष्टता का नाम दिया है। इस अवस्था में यदि किशोर या किशोरी व्यवसाय के सन्दर्भ में लैंगिक भूमिका के रूप में और अपनी योग्यताओं के रूप में अपनी पहचान बना पाते हैं या यूँ कहें कि वे 'मैं कौन हूँ ?' इस प्रश्न का जवाब ढूंढ पाते हैं तो उनकी पहचान का निर्माण सुव्यवस्थित व सकारात्मक रूप से होता है। लेकिन यदि इस अवस्था में बच्चों में स्वयं की इच्छाओं व योग्यताओं व समाज उनसे जो अपेक्षा करता हैं उनमें भेद आता है तो यह द्वन्द उनकी भूमिका को अस्पष्ट कर देता है। वे यह नहीं समझ पाते हैं कि आखिरकार उनकी पहचान क्या है ? एरिक्सन द्वारा पहचान निर्माण के बारे में जो बात कही गई है वह मर्शिया के विचारों से आपको और अधिक स्पष्ट होगी।

1.4.2 पहचान के सम्बन्ध में मर्शिया के विचार

जैसा कि पहचान के बारे में पहले ही जान चुके हैं। मर्शिया के अनुसार

'पहचान से अभिप्राय व्यक्तिगत सहजप्रवृति, योग्यताओं, धारणाओं व इतिहास का निरन्तर रूप से स्व के बिम्ब में संगठित होना है। इसके अन्तर्गत सोचे समझे विकल्प व निर्णय शामिल हैं जो कार्य, मूल्यों, विचारधाराओं व लोगों के लिए प्रतिबद्धता के बारे में है' I (मारसिया, 1987)

पहचान के सम्बन्ध में मर्शिया ने चार विकल्पों की बात की है। उनके अनुसार भी पहचान निर्माण किशोरावस्था के दौरान मुख्य रूप से होता है । पहला विकल्प, पहचान उपलब्धि (Identity Achievement) का है जिसके अन्तर्गत ।एक व्यक्ति उसके पास उपलब्ध सभी विकल्पों को भली-भांति जानने के बाद स्वयं के लिए उपयुक्त विकल्प चुनता है और उस रास्ते पर चलने के लिए प्रतिबद्ध भी होता है। स्कूल के अंत तक व कॉलेज के दौरान भी बच्चे अपने लिए उपयुक्त विकल्प का चुनाव करने में समर्थ होते हैं। दूसरा विकल्प, पहचान प्रतिबन्ध (Identity Foreclosure) का है जिसमे व्यक्ति बिना विकल्पों को परखे ही कोई एक रास्ते का चुनाव करता है। इस स्थिति में उसकी पहचान कोई अन्य निर्धारित करता है जैसे अभिभावक। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति को उसके माँ- बाप ने कहा कि तुम ऍम. बी. बी. एस. करके डॉक्टर बनोगे और उस बच्चे ने इसको स्वीकार कर लिया। तीसरा विकल्प, पहचान प्रसार (Identity Diffusion) का है। इसके अन्तर्गत भी व्यक्ति विकल्पों को जांचे बिना ही कार्य करता है। व्यक्ति स्वयं के बारे में कोई निष्कर्ष निकालने में असमर्थ होता है। वह यह समझ नहीं पाता है कि वह कौन है और जीवन में क्या करना चाहता है। उनके जीवन की कोई एक निश्चित दिशा नहीं होती वे सदैव दुविधा में ही जीवन व्यतीत करते है। इस विकल्प से जिन बच्चों या किशोरों की पहचान निर्मित होती है वे सदैव भविष्य से कोई उम्मीद नही रखते और उनकी प्रकृति भी दूसरों से अलग- थलग रहने की होने की सम्भावना अधिक होती है।

मर्शिया के पहचान निर्माण संबंधी विचारों के बाद आप एरिक्सन द्वारा दिया गया प्रत्यय मोरेटोरियम (Moratorium) समझ सकते हैं जिसमे उन्होंने कहा है कि यह वह अवधारणा है जिसमें किशोर विभिन्न

विकल्पों के बीच ही संघर्ष करते रहते हैं। एरिक्सन के अनुसार, किशोर या किशोरी जब अपनी निजी व व्यावसायिक विकल्पों को परखने के दौरान देरी करता है और यह समझने में ही लगा रहता है कि वह क्या करना चाहता है तो इस सम्पूर्ण समय अंतराल को उन्होंने मोरेटोरियम का नाम दिया है। इसी से सम्बंधित व्यावसायिक पहचान का अध्ययन हम अगले भाग में करेंगे।

1.5 व्यावसायिक पहचान

अब तक आपने पहचान के विषय में जाना और उससे सम्बंधित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को समझा। इस भाग में आप मुख्य रूप से व्यावसायिक पहचान को जानेंगे और पहचान से वह किस प्रकार अलग है यह भी जानेंगे

1.5.1. व्यावसायिक पहचान का अर्थ

अवश्य ही आप यह समझ गए होंगे कि व्यावसायिक पहचान किसी न किसी व्यवसाय जैसे डॉक्टर, इंजीनियर या शिक्षक या शिक्षिका की पहचान से सम्बंधित हैं परंतु यह भी ध्यान देने योग्य है कि व्यावसायिक पहचान के अन्तर्गत भी दोनों दृष्टिकोण महत्वपूर्ण हैं। कहने का अर्थ यह है कि समाज में किसी निश्चित व्यवसाय को कैसे पहचान जाना जाता है और उस व्यवसाय को करने वाला व्यक्ति किस प्रकार स्वयं की व्यावसायिक पहचान को लेता है। व्यावसायिक पहचान एक प्रकार की सामाजिक पहचान है और साथ ही किसी व्यवसाय के प्रति लोगों में एकता की भावना या सोच है। इसके अतिरिक्त यह वह पहचान भी है जो यह निर्धारित करती है कि लोग किस स्तर तक स्वयं को व्यावसायिक समूह के सदस्यों के रूप में देखते हैं। व्यावसायिक पहचान के अन्तर्गत व्यक्ति की भूमिका जिम्मेदारियों मूल्य व नैतिक मानक शामिल हैं जो किसी विशिष्ट व्यवसाय के द्वारा स्वीकार किए गए हैं। (मैथयू, 2014)

व्यावसायिक पहचान निर्माण एक जटिल प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी एक व्यवसाय के प्रति एकता का भाव विकसित होता है। इसी प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति अपनी निजी पहचान और व्यवसायिक पहचान के बीच सामंजस्य बैठाने का प्रयत्न करता है। व्यावसायिक पहचान की शुरुवात उसी वक्त हो जाती है जब व्यक्ति किसी व्यवसाय का शैक्षिक प्रशिक्षण प्राप्त करता है। व्यावसायिक पहचान गुणों, धारणाओं, मूल्यों, प्रवृतियों व अनुभवों पर आधारित व्यावासिक स्व धारणा के रूप में भी समझी जा सकती है।(इब्रा, 1999) व्यवसायिक पहचान की समझ आपको अगले भाग में पहचान व व्यावसायिक पहचान के बीच भेद जानकार हो जाएगी।

1.5.2 पहचान और व्यवसायिक पहचान में भेद

पहचान और व्यवसायिक पहचान के बीच भेद के अन्तर्गत कहीं न कहीं हम इन दोनों अवधारणाओं के बीच के सम्बन्ध की समझ का ही गहनता से अध्ययन करेंगे। पहचान किसी व्यक्ति के सम्पूर्ण गुणों, योग्यताओं, धारणाओं, प्रवृतियों आदि से है जिनके आधार पर समाज के अन्तर्गत उस व्यक्ति को विशेष माना जाता है। व्यवसायिक पहचान के अंतर्गत हम व्यक्ति विशेष के गुणों व योग्यताओं की अपेक्षा उसके व्यवसाय के सन्दर्भ में जो गुण, योग्यताएं, प्रवृतियाँ महत्व रखती है उनसे पहचान को तवज्जो देते हैं। व्यावसायिक पहचान को जहाँ एक ओर व्यक्ति की निजी पहचान के भाग के रूप में ही समझा जा सकता

है। वहीं दूसरी ओर समाज के नजरिये से व्यावसायिक पहचान एक समूह के रूप में भी देखी जा सकती है उदाहरणार्थ किसी शिक्षकध् शिक्षिका को सम्पूर्ण शिक्षण व्यवसाय की पहचान के अर्थ में जाना जाता है। हम यह जान ही चुकें हैं कि पहचान का निर्माण बच्चे के जन्म से ही शुरू हो जाता है और यह प्रक्रिया किशोरावस्था के दौरान काफी संवेदनशील हो जाती है। व्यावसायिक पहचान की शुरुआत किसी व्यक्ति के लिए तब होती है जब वह स्वयं के लिए किसी व्यवसाय का चुनाव करता है। यह चुनाव वह किशोरावस्था के दौरान भी कर सकता है और युवावस्था के दौरान भी कर सकता है। पहचान और व्यावसायिक पहचान दोनों ही एक दूसरे को समान रूप से प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ यदि कोई व्यक्ति डॉक्टरी पेशे का चुनाव करता है तो वह स्वयं की योग्यताओं में पेशे से सम्बंधित योग्यताओं को जोड़ता है। उसी प्रकार यदि कोई पेशेवर वकील किसी अपराध में शामिल होता है तो उसके निजी पहचान से सम्पूर्ण वकील पेशे की जो पहचान है वह भी प्रभावित होती है अर्थात लोगों के नजरिए में बदलाव होता है। व्यावसायिक पहचान को अब आप एक शिक्षकध् शिक्षिका के व्यवसाय के नजरिए से समझ सकते हैं।

1.6 व्यावसायिक पहचान निर्माण में सामाजिक-सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक रूप से पड़ने वाले प्रभाव

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 में लिखा गया है

'शिक्षक या शिक्षिका व बच्चे एक बड़े समाज का हिस्सा हैं जहाँ किसी जाति, लिंग, धर्म, भाषा और वर्ग का सदस्य होने की पहचान के साथ ही हम सामाजिक अंतःक्रिया करते हैं'

उपरोक्त वाक्य से आप कुछ हद तक ये समझ ही गए होंगे कि किसी व्यक्ति की पहचान का निर्माण उसके सामाजिक- सांस्कृतिक सन्दर्भ में रहकर ही होता है और साथ ही उस पर ऐतिहासिक व राजनैतिक प्रभाव भी पड़ते हैं। निम्न गतिविधि को करने के बाद इस पर चर्चा करने से शायद आप उसको और गहनता से समझ सकें

निम्न तालिका में कुछ व्यवसाय लिखे गए हैं। आप इन व्यवसायों को 1 से 6 तक संख्या का प्रयोग करके बताइए कि आप इनको किस क्रम में रखना चाहेंगी। कहने का अर्थ यह है कि आपके अनुसार कौन सा व्यवसाय पहले स्थान पर , कौन सा दूसरे स्थान पर होना चाहिए और उसी तरह आप इन व्यवसायों को प्राथमिकता के आधार पर नंबर दे सकते हैं। स्वयं अंक देने के बाद आप उस तालिका को अपने अभिभावक, दोस्त और उस व्यवसाय को करने वालों से प्राथमिकता के आधार पर अंक जान कर तालिका को भरिए।

व्यवसाय	आप की प्राथमिकता का क्रम	अभिभावक की प्राथमिकता का क्रम	दोस्त की प्राथमिकता का क्रम	डॉक्टर की प्राथमिकता का क्रम	शिक्षक की प्राथमिकता का क्रम	इंजीनियर की प्राथमिकता का क्रम	वकील की प्राथमिकता का क्रम	व्यवसायी की प्राथमिकता का क्रम
डॉक्टर								
शिक्षक								
इंजीनियर								
व्कील								
व्यवसायी								

उपरोक्त गतिविधि में मिली अनुक्रियाओं के आधार पर आप अवश्य ही यह देख पा रहे होंगे कि किसी विशेष व्यवसाय से सम्बंधित व्यावसायिक पहचान के बारे में लोगों का क्या नजरिया रहता है। किसी व्यवसाय के प्रति किस तरह का सामाजिक- सांस्कृतिक व राजनैतिक रवैया है। साथ ही इतिहास में उस व्यवसाय की क्या छवि रही है ये सभी आयाम वर्तमान में उस व्यावसायिक पहचान को काफी हद तक सुनिश्चित करते हैं। अभिभावक और आपने जिस व्यवसाय को पहले और आखिरी स्थान पर रखा है उसमें अंतर हो सकता है। उसी प्रकार एक शिक्षिका और डॉक्टर ने स्वयं के व्यवसाय को किस स्थान पर रखा है उसमें भी अंतर हो सकता है और इसके कारण को जानना भी काफी रुचिकर साबित होगा। परंतु एक बात हमारे लिए समझना बहुत महत्वपूर्ण है कि एक शिक्षक या शिक्षिका की व्यावसायिक पहचान का निर्माण किस प्रकार हो रहा है? आगे के सम्पूर्ण भाग को हम शिक्षक या शिक्षिका की व्यावसायिक पहचान को केंद्र में रखकर समझेंगे।

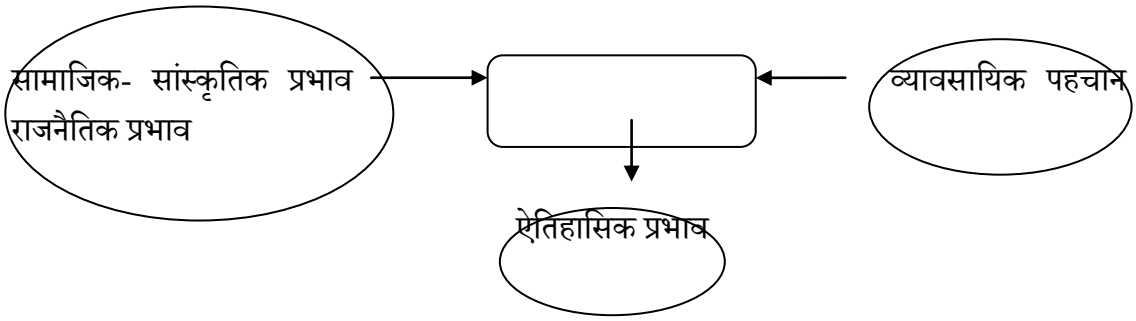

सामाजिक- सांस्कृतिक प्रभाव

भारत एक विविधताओं का देश है यह हम सभी जानते हैं और ये विविधताएं जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र, लिंग और भाषा आदि के आधार पर मुख्य रूप से पाई जाती है। व्यावसायिक पहचान को प्रभावित करने में ये सभी कारक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारतीय समाज में जाति बहुत बड़े स्तर पर किसी व्यक्ति की पहचान का निर्धारण करती है। व्यावसायिक पहचान के सम्बन्ध में यह बात और भी आवश्यक हो जाती है क्योंकि जाति का आधार विभिन्न व्यवसायों को ही बनाया गया है। दुबे अपनी पुस्तक 'भारतीय समाज' में इस बात को बहुत स्पष्ट रूप से हमारे सम्मुख रखतें हैं कि विभिन्न व्यवसायों को अलग - अलग स्तर पर रख कर किस तरह जाति के अन्तर्गत बांटा गया है । इसी के परिणामस्वरूप हम वर्तमान समय में भी देख सकते हैं कि कुछ व्यवसायों के प्रति बहुत सीमित मानसिकता का प्रदर्शन करते हैं। कुछ व्यवसाय ऐसे हैं जिनको आज के समय भी कुछ विशेष जातियों के लिए उपयुक्त माना जाता है। उदाहरण के लिए वर्तमान समय में भी सफाई कर्मचारी विभाग के अन्तर्गत निम्न जाति के लोग ही आते हैं और इस जाति तत्व का प्रभाव उनकी व्यावसायिक पहचान पर पड़ता है। जाति के आधार पर पहचान व्यक्ति को जन्म से मिलती है जिसको वह बदल नहीं सकता। जन्म के साथ मिली इस पहचान को 'प्रच्छन्न स्थिति' (Ascribed Status) के नाम से जाना जाता है। सामाजिक- सांस्कृतिक रूप से पड़ने वाले प्रभाव को लिंग के दृष्टिकोण से भी समझा जा सकता है और इस रूप में यह और अधिक उभर कर सामने आता है। शिक्षण व्यवसाय के अन्तर्गत ही देखा जाये तो इस व्यवसाय को केवल महिलाओं के लिए उपयुक्त माना जाता है। महिलाओं से यह उम्मीद की जाती है कि एक शिक्षिका के साथ साथ वे घर की देखरेख भी भली -भांति कर सकती हैं। इस सम्बन्ध में शिक्षण व्यवसाय को योग्यताओं व क्षमताओं के नजरिये से बहुत कम आँका जाता है। शिक्षक के रूप में एक पुरुष और शिक्षिका के रूप में एक महिला की पहचान समाज की इस मानसिकता से काफी प्रभावित होती है। समाज ने महिलाओं के लिए शिक्षण व्यवसाय की जो स्वीकृति दी है उनसे महिला व पुरुष दोनों की व्यावसायिक पहचान एक शिक्षक के रूप में प्रभावित होती है। उसी प्रकार यदि महिला आर्मी में भाग लेने का निर्णय लेती है तो उसके निर्णय को समाज में पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं जाता जिसकी वजह से उनकी व्यावसायिक पहचान पर काफी असर पड़ता है। क्षेत्र के सन्दर्भ में व्यावसायिक पहचान पर चर्चा की जाए तो हमारे सामने उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में रहने वाले भारतीयों का उदाहरण सामने आता है। एक व्यक्ति जो उत्तर- पूर्वी क्षेत्र से दिल्ली जैसे शहर में आकर बैंक व्यवसाय या अन्य किसी व्यवसाय का चुनाव करता है तो वहां भी क्षेत्रीय विभिन्नता के कारण सभी आवश्यक लवहलजंमद होते हुए भी उस व्यक्ति की व्यावसायिक पहचान पर नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं। भारतीय होते हुए भी उन्हें अलगाव की भावना का सामना करना पड़ता है। समान रूप से धर्म और भाषा का प्रभाव भी व्यक्ति की व्यावसायिक पहचान पर पड़ता है। उपरोक्त वर्णित सभी सामाजिक- सांस्कृतिक कारण किसी भी व्यक्ति की पहचान और विशिष्ट रूप से व्यावसायिक पहचान को प्रभावित करते हैं। अगले भाग में हम ऐतिहासिक रूप से व्यावसायिक पहचान पर पड़ने वाले प्रभाव को जानेंगे।

ऐतिहासिक प्रभाव

व्यावसायिक पहचान को निर्मित करने में अथवा प्रभावित करने में इतिहास भी उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जितना सामाजिक- सांस्कृतिक कारक। किसी भी व्यवसाय के प्रति इतिहास में क्या दृष्टिकोण रहा है और उसमे समय- समय पर क्या बदलाव हुए हैं इन सभी तत्वों से उस व्यवसायों की वर्तमान समय में पहचान प्रभावित होती है। वर्तमान समय में भारतीय सेवा संघ के अन्तर्गत होने वाले सिविल सर्विसेज की परीक्षा के प्रति लोगों का जो रवैया है उसमें इतिहास में इस मुद्दे पर हुए बदलाव काफी महत्वपूर्ण स्थान रखतें हैं। आज के समय एक आई. ऐ. एस अफसर की जो व्यावसायिक पहचान है और जितनी तवज्जो इस पेशे को समाज में दी गई है उसका कारण ब्रिटिश काल में इस पेशे को दिए जाने वाला स्थान है। ब्रिटिश काल से ही इस पेशे को निर्णय लेने के सम्बन्ध में काफी महत्वपूर्ण माना गया है। साथ ही एक आई. ऐ. एस अफसर को दिए जाने वाले विभिन्न प्रकार के ऐशोआराम की सुविधाओं से भी लोगों की रूचि इस पेशे के प्रति बढ़ गई। पिछले 100-150 वर्षों के भीतर भी इस पेशे के रुतबे में भारतीय समाज के अन्तर्गत कोई फर्क नहीं आया। वर्तमान में भी दुनिया भर के पेशों की भरमार होते हुए भी एक आई. ऐ. एस अफसर के रूप में किसी व्यक्ति की व्यावसायिक पहचान अन्य पेशों से बहुत अलग है।

एक शिक्षक या शिक्षिका की व्यावसायिक पहचान इतिहास से वर्तमान तक क्या रही और किस प्रकार की नीतियों ने उसमें बदलाव किए इसका जिक्र कृष्ण कुमार अपने लेख 'एक दब्बू तानाशाह' में बखूबी करते हैं। भारत में पूर्व ब्रिटिश काल में शिक्षक को एक गुरु का दर्जा दिया जाता था उसका स्थान समाज में सर्वोपरि था। शिक्षक के पास यह अधिकार था कि वह अपने अनुसार शिक्षाशास्त्र का चुनाव कर सकता था। वह यह निर्णय ले सकता था कि शिष्यों को क्या, कब, कितना और कैसे पढ़ाना है। इसके बाद ब्रिटिश काल में शिक्षण व्यवसाय को पूर्ण रूप से बदल दिया गया । अब शिक्षक से यह अधिकार छीन लिया गया कि क्या और कैसे पढ़ाया जाना है? शिक्षक को अब सरकार द्वारा एक तय तनख्वा दी जाती थी और उसको तय पाठ्यक्रम दिया जाता था जो उन्हें अन्य क्लर्क संबंधी कार्यों जैसे दाखिला, उपस्थिति व परीक्षा आदि के रिकॉर्ड रखने के साथ पूरा करना होता था। इसके अलावा भी उन्हें जनगणना कार्य, पाठ्यपुस्तक वितरण आदि के कार्यों में भी व्यस्त रखा जाता था जो वर्तमान में भी देखा जा सकता है । जितने स्तर के कार्य एक शिक्षक को करने होते थे उनसे इस व्यवसाय को मिलने वाला दर्जा बहुत कम हो गया और व्यवसाय की छवि समाज में खराब होने लगी। विशिष्ट रूप से स्कूल शिक्षक कि नौकरी को लोगों ने निचले स्तर के पेशे में रख दिया। तनख्वा के नजरिये से भी एक शिक्षक को बहुत नीचे रखा गया जबकि उसी स्तर की किसी अन्य पेशे को तुलनात्मक रूप से अधिक तनख्वा दी जाती थी। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से शिक्षण व्यवसाय के दर्जे में जो गिरावट हुई उसकी वजह से धनी परिवारों ने जो मुख्य रूप से शहरों में थे उन्होंने इस व्यवसाय में रूचि लेना छोड़ दिया। अंत में यह व्यवसाय उच्च जाति के उन लोगों के लिए रह गया जिनके पास बहुत कम मात्रा में भूमि शेष रह गई थी। शिक्षण व्यवसाय में इतिहास में हुए बदलावों का ही नतीजा है कि वर्तमान समय में भी एक शिक्षक या शिक्षिका अपनी व्यावसायिक पहचान को लेकर कभी विश्वास महसूस नहीं करते। वर्तमान समय में भी लोग चुनाव के लिए ऑप्शन होने पर शिक्षण व्यवसाय को चुनने से हिचकिचाते हैं। उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि

इतिहास किस प्रकार से व्यावसायिक पहचान को प्रभावित करता है। अगले भाग में हम राजनैतिक रूप से व्यावसायिक पहचान पर पड़ने वाले प्रभाव को जानेंगे।

राजनैतिक प्रभाव

जैसा कि हमने पहले पढ़ा कि व्यावसायिक पहचान का निर्माण उसी समय शुरू हो जाता है जब हम अपने लिए किसी व्यवसाय का चुनाव करते हैं और व्यवसाय का चुनाव करते समय यह बात बहुत महत्वपूर्ण साबित होती है कि उस देश में राजनैतिक रवैया किस व्यवसाय के प्रति क्या है। अलग - अलग व्यवसायों के प्रति किस प्रकार कि नीतियों का निर्माण होता है उनका सीधा प्रभाव व्यावसायिक पहचान पर पड़ता है इसके अन्तर्गत सबसे पहले हम तनख्वा की ही बात कर सकते हैं। विभिन्न सरकारी संस्थानों में किसी पेशे का चुनाव और स्कूल में शिक्षक के पेशे का चुनाव दोनों में ही हम तनख्वा के बीच खासा अंतर देख सकते हैं। एक अन्य उदाहरण के रूप में हम 'आरक्षण' के मुद्दे को उठा सकते हैं। विभिन्न व्यवसायों में सरकार द्वारा दिया जाने वाला आरक्षण का फैसला भी लोगों की व्यावसायिक पहचान को प्रभावित करता है चूँकि भारत में यह आरक्षण जाति के आधार पर दिया जाता है इसलिए आरक्षण का लाभ पाकर जब व्यक्ति किसी व्यवसाय में कोई मकाम हासिल करता है तो वह अन्य लोगों के बीच आलोचनात्मक दृष्टि से देखा जाता है। योग्यता होने के बावजूद भी लोग उसको नीची नजरों से देखतें हैं जिसके कारण उस व्यक्ति की व्यावसायिक पहचान भली भांति निर्मित नहीं हो पाती या यूँ कहें कि वह राजनैतिक निर्णयों से काफी प्रभावित होती है। साथ ही सरकार का कुछ व्यवसायों के संस्थानों का निजीकरण करना भी व्यावसायिक पहचान को बहुत प्रभावित कर सकता है।

1.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत आपने पहचान व व्यावसायिक पहचान की समझ बनाई। पहचान को पूर्ण रूप से समझने के लिए मनोवैज्ञानिक में सिद्धान्तों एरिक्सन व मार्शिया के सिद्धान्त को जान कर हम पाते हैं कि पहचान निर्माण प्रक्रिया में किशोरावस्था बहुत महत्वपूर्ण अवस्था है। व्यावसायिक पहचान के अंतर्गत यदि शिक्षण व्यवसाय की चर्चा करें तो मालूम होता है कि एक हिंदी शिक्षक और गणित शिक्षक आदि की पहचान विषय के विशिष्टीकरण के आधार पर भी अलग होती है। समाज के अंतर्गत अलग अलग व्यवसाय से विभिन्न धारणाएं जुडी होती हैं जो किसी भी व्यक्ति की व्यावसायिक पहचान को प्रभावित करने का सामर्थ्य रखती हैं। व्यावसायिक पहचान पर पड़ने वाले प्रभावों में सामाजिक- सांस्कृतिक प्रभाव, ऐतिहासिक प्रभाव व राजनैतिक प्रभाव शामिल हैं। व्यक्ति की जाति, धर्म, लिंग, क्षेत्र व भाषा आदि सभी तत्व उसकी व्यावसायिक पहचान को प्रभावित करते हैं। उसी प्रकार भारत के इतिहास में शिक्षण व्यवसाय में होने वाले बदलावों ने भी वर्तमान समय में व्यावसायिक पहचान को निर्मित किया है। सरकार द्वारा बनाये जाने वाली विभिन्न प्रकार की नीतियां राजनैतिक रूप से व्यावसायिक पहचान को प्रभावित करती हैं।

1.8 शब्दावली

1. पहचान उपलब्धि (Identity Achievement) - वह अवस्था जिसमें व्यक्ति की पहचान का निर्माण उपलब्ध सभी विकल्पों को परखने के बाद स्वयं ले लिए सही विकल्प चुनने पर होता है।
2. पहचान प्रतिबन्ध (Identity Foreclosure)- जब विकल्पों को बिना जांचे परखे व्यक्ति अभिभावकों द्वारा सुझाये गए विकल्प को ही सम्पूर्ण जीवन के लिए चुन लिए जाता है।
3. पहचान प्रसार (Identity Diffusion)- जब व्यक्ति विकल्पों को परखे बिना ही किसी एक विकल्प को चुन लेता है और यह विकल्प उसके जीवन के लिए सही साबित नही होता और वह अपनी पहचान को लेकर दुविधा में रहता है।
4. मोरेटोरियम (Moratorium) - वह स्थिति जब किशोर विभिन्न विकल्पों के बीच ही संघर्ष करते रहते हैं और किसी भी नतीजे पर नहीं पहुँच पाते हैं।
5. प्रच्छन स्थिति (Ascribed Status) - जन्म के समय मिलने वाली स्थिति जिसमें व्यक्ति कभी बदलाव नहीं कर पाता जैसे जाति के आधार पर मिलने वाली पहचान।

1.9 सन्दर्भ सूची

1. Kumar, Krishna. 1991. Political Agenda of Education. SAGE
2. National Curriculum Framework, 2005
3. Dubey, S.C. 1990. Indian Society. National Book Trust. New Delhi
4. Woolfolk, Anita.1980. Educational Psychology. Pearson
5. Pollard, Andrew. 2002. Reflective Teaching: Effective and Evidence-informed Professional Practice. Continuum. London

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. पहचान और व्यावसायिक पहचान के बीच सम्बन्ध को समझाइए
2. मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग करके पहचान निर्माण की प्रक्रिया को बताइए।
3. सामाजिक- सांस्कृतिक, ऐतिहासिक व राजनैतिक रूप से व्यावसायिक पहचान पर पड़ने वाले प्रभावों का विवेचन कीजिये।

इकाई 2 - एक शिक्षक बनने में स्वयं की आकांक्षाएं, सपने, चिंताओं और संघर्षों का अन्वेषण करना, पुनर्चयन करना और साझा करना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 शिक्षक शिक्षा
  2.3.1 शिक्षक की आकांक्षायें
  2.3.2 शिक्षक की चिंतायें एवं तनाव
2.4 शिक्षक की चिंताऐं और संघर्ष
  2.4.1 अध्यापक की चुनौतियां
  2.4.2 शिक्षकों की जिम्मेदारी
  2.4.3 अध्यापक अवधारणा
  2.4.4 शिक्षा समुदाय / शिक्षकों के लिए 11 बिन्दुओं की शपथ
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

शिक्षा एक प्रतिपादन है, उसका मूर्तरूप शिक्षक है। अध्यापक को अपनी गरिमा समझने और चरितार्थ कर दिखाने में वर्तमान परिस्थितियाँ भी बाधा नहीं पहुँचा सकती। जहाँ तक शिक्षणतंत्र के वेतनमान सुविधा साधनों को बढ़ाए जाने की बात है वहाँ तक तो अधिकाधिक साधन जुटाने का समर्थन ही किया जाएगा पर इसमें यदि कुछ कमी रहे, अड़चन पड़े तो भी यह तो हो ही सकता है कि अध्यापकगण अपनी गुरु महिमा को अपने ही बलबूते बनाए रहें और अपने गौरव का महत्व अनुभव करते हुए बढ़ते चलें। विद्यार्थी अपने समय का महत्वपूर्ण भाग अध्यापकों के साथ रहकर विद्यालयों में गुजारते हैं। उनके प्रति सहज श्रद्धा

और कृतज्ञता का भाव भी रहता है। उनके उपकारों को कोई कैसे भुला सकता है? उनसे आयु में ही नहीं, हर हालत में छोटी स्थिति वाले छात्रों पर उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व की छाप पडऩी ही चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में नए अवसरों ने ना केवल स्टूडेंट्स के लिए ज्ञान के दरवाजे खोले हैं बल्कि टीचरों को भी कई तरह के अवसर मुहैया कराए हैं. भारत में टीचिंग बेहद गरिमामय प्रोफेशन है और टीचरों का स्थान हमेशा ही ऊंचा रहा है. यही कारण है कि भारत में ज्यादातर युवा टीचर बनना चाहते हैं. आर्थिक उदारीकरण के बाद से प्राइवेट स्कूलों में ढेरों वैकेंसी मौजूद हैं. देश के दूर-दराज इलाकों में भी अब स्कूल, कॉलेज और यूनिवर्सिटीज खुल रही हैं और इसमें बड़ी पूंजी का निवेश किया जा रहा है. जाहिर है कि इन स्कूल-कॉलेज में पढ़ाने के लिए योग्य, ट्रेन्ड और प्रोफेशनल टीचर्स की मांग भी बढ़ती जा रही है. जब शिक्षित समाज की बात उठी है तो सबसे पहले शिक्षित समाज में नाम आता है देश को शिक्षित करने वाले हमारे आदरणीय शिक्षकगण का. अब जब शिक्षकों की बात आई है तो हमें याद आती है आचार्य चाणक्य की जिन्होंने अपना शिक्षण धर्म बखूबी निभाया देश के प्रति भी और समाज के प्रति भी. ऐसे और भी इस देश में बहुत से अनुकरणीय उदाहरण हैं जो शिक्षकों को सम्मानीय स्थान दिलाने में विशिष्ट भूमिका निभाते हैं. दो दशक पहले के समाज में अभिभावक शिक्षकों को भगवान् से भी ज्यादा सम्मान देते और दिलाते थे अपने बच्चे की हर अच्छी बुरी बात से अध्यापक को परिचित कराते थे. बच्चे की गलती पर स्वयं उसे न डांटकर उसके अध्यापकों के सामने उसकी गलती का खुलासा करते थे और अध्यापक उन्हीं के समक्ष बच्चे को समझाते थे और बच्चा भी अपने अध्यापक के हर एक शब्द को अक्षरत: पालन कर उनकी महत्ता को द्विगुणित करता था. परन्तु आज का समय बदल चुका है, परिवार बिखर चुके हैं माता-पिता अपनी एक या दो संतानों को बड़े ही नाजों से पालते हैं ऐसे में उनके बच्चे को किसी भी प्रकार की असुविधा उन्हें गवारा नहीं. जिस देश में भगवान् श्री कृष्ण और सुदामा एक ही आश्रम में शिक्षित हुए हों उस देश में आज विद्यालयों का विभाजन हो चुका है. शिक्षक समाज से जिस सम्मान की आकांक्षा रखता है उसे वह भी प्राप्त हो सकेगा और उसे इस सम्मान की चाहत हो भी क्यों न? शिक्षक ही तो इस समाज को चिकित्सक, आई एस अफसर, वैज्ञानिक और न जाने क्या क्या देता है ! ये समाज इन शिक्षकों का ऋणी है. इनको उचित सम्मान देना हम सब की जिम्मेदारी भी है और कर्तव्य भी. परन्तु साथ ही शिक्षकों को भी अपनी भूमिका को समझना होगा और पूर्णनिष्ठा के साथ इसका निर्वहन भी करना ही होगा ! तभी देश में शिक्षा का गिरता हुआ स्तर ऊपर उठ सकेगा और एक कर्तव्यनिष्ठ, जागरूक, निष्ठावान, प्रतिभावान नागरिक देश को मिल सकेगा जिस पर हम अभिमान कर सकेंगे और गर्व के साथ एक बार फिर कह सकेंगे कि हम ही हैं जगतगुरु ! महात्मा कबीर ने सच ही कहा है– गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है गढ़ी – गढ़ी काढ़े खोट, अंतर हाथ सहार दे बाहर मारे चोट .

भारत की वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था में अध्यापक की कल्पना चिंतन करने के बजाय, चिंतित रहने वाले एक मनुष्य के रूप में की जा सकती है. समाज के एक जागरूक सदस्य के रूप में अध्यापकों से हमारी बड़ी अपेक्षाएं होती है. लेकिन उनके सहयोग में संकोच करने वाली सोच का दबदबा समाज में दिखायी देता है.

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

1. एक शिक्षक की आकांक्षाओं की पहचान कर सकेंगे।
2. शिक्षक शिक्षा एवं शिक्षक शिक्षा की समस्याओं से परिचित हो सकेगें।
3. शिक्षक की चिंताओं और संघर्षो का अन्वषण कर सकेगें।
4. शिक्षक के संघर्षो का अन्वेषण कर उन्हें साझा कर सकेंगे।
5. शिक्षक अपनी मौलिक जिम्मेदारी से परिचित हो सकेंगे।
6. अध्यापक अवधारणा का स्पष्टीकरण कर सकेंगे।

2.3 शिक्षक शिक्षा

जॉन एडम्स ने कहा कि "अध्यापक ही व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व का निर्माणक एवं विकास का प्रमुख आधार है। बिना शिक्षक की सक्रिय सहभागिता के किसी राष्ट्र का वर्तमान एवं भविष्य का निर्माण एवं विकास सम्भव नहीं है।" इसी बात को भारतीय मनीशियों ने, "गरु : ब्रह्मा, गुरु : विष्णु, गुरु : देवो महेश्वर:" के रूप में कहा। यह परम्परा एवं अध्यापक के प्रति सम्मान सनातन से चल आ रहा है, किन्तु जब अध्यापक की दशा एवं दिशा को वर्तमान परिप्रेक्ष में देखने का प्रयास करता हूँ तो उसका स्वरूप परिवर्तित दिखायी पड़ता है, जिसमें विगद दशक शिक्षक समाज के लिए बहुत ही असन्तोषजनक रहा उसमें 'अध्यापक शिक्षा' के गणवत्ता पर एक प्रकार से प्रश्नचिन्ह अथवा चुनौती के रूप में दिखायी पड़ता है।

इस प्रकार से 'भूमण्डलीकरण' के नाम पर जहाँ पर बाजार को प्रमुख माना जा रहा है, वहीं पर इस भूमण्डलीकरण का प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे 'अध्यापक शिक्षा' पर दिखायी पड़ने पड़ने लगा है। जितनी भी नीति नियामक संस्थाओं तथा कार्यस्वरूप के बीच एक भारी अन्तर दिखायी पड़ रहा है, शिक्षा को दान की जगह व्यापार की कोटि मं रखा जा रहा है शिक्षक की भूमि सेल्समैन की हाती जा रही है। प्रशिक्षण संस्थाओं में भौतिक संसाधन एक प्रकार से औपचारिकता तथा निरीक्षण की वस्तु बनकर रह गयी है। शिक्षक अपने को दिहाड़ी पर काम करने वाले एक श्रमिक के रूप में देख रहा है, जिसमें कुण्ठा, निराशा एवं हताशा का होना स्वाभाविक है। शिक्षा के सम्बन्ध में एक महान सत्य हमने सीखा था। हमने यह जाना था कि मनुष्य से ही मनुष्य सीख सकता है। जिस तरह जल से ही जलाशय भरता है, दीप से ही दीप जलता है, उसी प्रकार प्राण से प्राण सचेत होता है। चरित्र को देखकर ही चरित्र बनता है। गुरु के सम्पर्क- सान्निध्य, उनके जीवन से प्रेरणा लेकर ही मनुष्य- मनुष्य बनता है। इस प्रकार शिक्षक अपने श्रेष्ठ आचरण से श्रेष्ठ मनुष्य (शिष्य) का निर्माण करता है।

2.3.1 शिक्षक की आकांक्षायें

शिक्षकों के पास विषयों को भली भाँती समझने की क्षमता होनी चाहिए ताकि वेह एक नई पीढ़ी कों उस का सार संप्रेशित कर सकें लक्ष्य है की एक सुदृढ़ ज्ञान का आधार स्थापित किया जाए जिस की आधारशिला पर छात्र अपने जीवन के अलग अलग अनुभवों का निर्माण कर सकें पीढी दर् पीड़ी ज्ञान बांटना छात्रों के विकास में कारगर साबित होता है और उन्हें समाज के उपयोगी सदस्यों में विकसित होने में मदद करता है अच्छे शिक्षक अच्छा निर्णय, अनुभव और ज्ञान कों प्रासंगिक ज्ञान में अनुवादित कर सकते हैं जो छात्र समझ सकें, याद रख सकें और औरों कों बाँट सकें एक पेशे के रूप में, शिक्षण कार्य में कार्य संबंधित तनाव उत्पन्न हो रहा है जो ब्रिटेन जैसे कुछ देशों में किसी भी पेशे, के सर्वोच्च में सूचीबद्ध हैं। इस समस्या कों तेज़ी से मान्यता प्राप्त हो रही है और सहायक प्रणालियों की जगह बनायी जा रही है ! कई बार लोग अध्यापन कार्य को हलके रूप में ले लेते हैं। जैसे ही पढ़ाई खत्म होती है, हर कोई कहने लगता है कि बस अब कहीं न कहीं नौकरी पर लग जाओ। कुछ नहीं तो किसी स्कूल में या फिर घर पर ही बच्चों को ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दो। ऐसा कहते समय शायद यह नहीं सोचा जाता कि वह व्यक्ति इस कार्य के लिए पूरी तरह उपयुक्त है भी या नहीं।

जो काम सबसे ज्यादा ईमानदारी, समर्पण और निष्ठा की मांग करता है, उसे ही सबसे आसान और सहज मान कर गंभीरता से नहीं लिया जा रहा। एक मां जिस तरह बच्चे को जन्म देती है, उसी तरह एक शिक्षक उसके व्यक्तित्व को बनाने का काम करता है। सूचना क्रांति के इस जमाने में भले ही सब कुछ इंटरनेट के जरिए हासिल करना संभव हो गया हो, लेकिन कुछ बातें अभी भी साथ-साथ बैठ कर, सामूहिकता के साथ ही सीखना और सिखाया जाना संभव होगा। अच्छा शिक्षक वही होगा जिससे हर पल विद्यार्थियों को कुछ न कुछ मिलता रहे, वह चाहे जीवन जीने की कला हो या पाठ्यक्रम की कोई परिभाषा। उसका व्यक्तित्व ऐसा हो, जिसमें विद्यार्थियों को विश्वास व्यक्त करने में कोई संकोच नहीं हो। विद्यार्थी उसमें अपना एक रचनात्मक दोस्त व पथ-प्रदर्शक देख सकें। युवा दोस्त शिक्षक जैसे महत्त्वपूर्ण दायित्व के निर्वाह के लिए प्रस्तुत होना चाहते हैं, एक बार अपनी डिग्री और अपने अंत:करण को जरूर खंगाल लें। क्या सचमुच शिक्षक में आवश्यक गुणों के कुछ रजत कण बिखर कर सामने दिखाई देते हैं? अगर ऐसा होता है तो निश्चित ही यह दायित्व हमारे लिए उपयुक्त होगा।

भारतीय संस्कृति का एक सूत्र वाक्य प्रचलित है तमसो मा ज्योतिर्गमय इसका अर्थ है अंधेरे से उजाले की ओर जाना। इस प्रक्रिया को वास्तविक अर्थो में पूरा करने के लिए शिक्षा, शिक्षक और समाज तीनों की बड़ी भूमिका होती है। भारतीय समाज शिक्षा और संस्कृति के मामले में प्राचीनकाल से ही बहुत समृद्ध रहा है। भारतीय समाज में जहां शिक्षा को शरीर, मन और आत्मा के विकास का साधन माना गया है, वहीं शिक्षक को समाज के समग्र व्यक्तित्व के विकास का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। भारतीय शिक्षा का इतिहास भारतीय सभ्यता का भी इतिहास है। भारतीय समाज के विकास और उसमें होने वाले परिवर्तनों की रूपरेखा में हम शिक्षा के स्थान और उसकी भूमिका को भी निरंतर विकासशील पाते हैं। महर्षि अरबिन्द ने एक बार शिक्षकों के सम्बन्ध में कहा था कि ‘‘ शिक्षक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते

हैं। वे संस्कारों की जड़ो में खाद देते हैं और अपने श्रम से सीचकर उन्हें शक्ति में निर्मित करते हैं। महर्षि अरबिंद का मानना था कि किसी भी राष्ट्र व विश्व के निर्माण में शिक्षकों की भूमिका ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। शिक्षा का केंन्द्रिय घटक विद्यार्थी होता है और उन्हें सही दिशा निर्देशन करनेवाला प्रमुख घटक शिक्षक होता है। शिक्षा के अनेक उद्देश्यों की पूर्ति शिक्षकों के माध्यम से ही होती है। समाज का उनके प्रति कर्तव्य होता है और उनका भी समाज के प्रति उत्तरदायित्व रहता है। शिक्षकों के माध्यम से ही होती है। शिक्षक अपने दायित्वों का निर्वाह भली भांति करने हेतु सदैव तत्पर रहते हैं। शिक्षा में शिक्षक ही सामाजिक विकास का सूत्रधार होते हैं। वास्तव में किसी समाज की अभिलाषा, आकांक्षा, आवश्यकता, अपेक्षा और आदर्शो को सफल बनाने का कार्य शिक्षक ही कर सकते हैं। भारत के महान शिक्षाविद् डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन जब सन् 1962 में देश के राष्ट्रपति के रूप में पदासीन हुए तो उनके चाहने वालों ने उनके जन्मदिन को शिक्षक दिवस के रूप् में मनाने की अपनी इच्छा उनके समक्ष प्रकट की। इस पर उन्होंने स्वयं को गोरवान्वित अनुभव करते हुय अपनी अनुमति प्रदान की और तब से लेकर आज तक प्रत्येक 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस के रूप में उनका जन्म दिन मनाया जाता है। डॉ0 राधाकृष्णन ने शिक्षा को एक मिशन के रूप में देखा और उनके अनुसार शिक्षक होने का अधिकारी वही व्यक्ति है, जो अन्य जनों से अधिक बुद्विमान व विनम्र हो। उनका कहना था कि उत्तम अध्यापन के साथ-साथ शिक्षक का अपने विद्यार्थियों के प्रति व्यवहार व स्नेह उसे एक सुयोग्य शिक्षक बनाता है। मात्र शिक्षक होने से कोई योग्य नही हो जाता बल्कि यह गुण उसे अर्जित करना होता है। शिक्षा मात्र ज्ञान को सूचित कर देना नही होती वरन् इसका उद्देश्य एक उत्तरदायी नागरिक का निर्माण करना है। शिक्षा के मंदिर कहे जाने वाले विद्यालय निश्चित ही ज्ञान के शोध केंद्र, संस्कृति, के तीर्थ एवं स्वतंत्रता के संवाहक होते हैं। ऐसा माना जाता है कि यदि जीवन में शिक्षक नहीं है तो शिक्षण संभव नही है। शिक्षण का शाब्दिक अर्थ शिक्षा प्रदान करना है जिसकी आधार शिला शिक्षक रखता है। भारतीय समाज में शिक्षक सदैव पूजनीय रहे हैं क्योकि उन्हें गुरू कहा जाता है। परन्तु वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाओं के स्वरूप् में आ रहे परिवर्तनों से शिक्षक सदैव पूजनीय रहे हैं क्योकि उन्हें गुरू कहा जाता है। परन्तु वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाओं के स्वरूप में आ रहे परिर्वनों से शिक्षक भी अछूते नहीं रहे हैं। यह शोचनीय विषय बनता जा रहा है कि आज के समय में शिक्षा का अर्थ मात्र पुस्तकीय ज्ञान और विश्वविद्यालय अथवा संस्थान में अच्छे अंक लाकर एक अच्छी सी नौकरी मिल जाना रह गया है।

2.3.2 शिक्षक की चिंतायें एवं तनाव

इसमें संदेह नहीं कि शिक्षक भी आम आदमी है। अतः सामान्य व्यक्ति की जो विशेषताऐं हैं वही शिक्षकीय व्यक्तित्व में भी दृष्टिगोचर होती हैं परंतु कुछ ऐसी विशेषतायें है जो शिक्षक को सामान्यजन से पृथक करती हैं। भारतीय समाज के शिक्षकों में संवेदनशीलता, आत्मीयता, परोपकारी वृत्ति, सहृदयता, ममतामयीता, मानवतावादी वृत्ति, सीधे-सच्चे, प्रतिष्ठित, सौहार्दता, दक्षता, सक्रियता, परिवर्तनवादिता, विषय ज्ञान पर पर्याप्त प्रभुत्व आदि गुण होते हैं। इनकी सहायता से वह समाज में मान सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। समाज भी अपने भावी नागरिकों के निर्माण का वजन शिक्षकों पर डाल कर निश्चित हो जाता है लेकिन

कहीं न कहीं वह शिक्षकों के प्रति अपने दायित्वों को भूल जाता है। वहीं दूसरी ओर शिक्षक अर्थाभाव, पारिवारिक उल्झनों और समाज की उदासीनता के बाबजूद भी अपने दायित्वों एवं कार्यो के प्रति प्रामाणित रहने का प्रयास करते रहते हैं। विश्लेष्ट होता है कि आज के परिवेश में समाज, सरकार और शिक्षा में सुद्रढ़ सामंजस्य न होने के कारण शिक्षकों की सामाजिक प्रतिष्ठा में भारी गिरावट आ गयी है।

समाज द्वारा शिक्षक पर दायित्वों का बोझ डालना तथा शिक्षक की इस कार्य से मुक्ति पाने के लिए अधिकाधिक धन अर्जन की प्रवृत्ति परोक्ष रूप से सपूर्ण शिक्षा व्यवस्था में अव्यवस्था उत्पन्न कर रही है। अर्थात समाज शिक्षकों के प्रति उदासीन है और शिक्षक सामाजिक उत्तरदायित्व से दूर भागने के प्रयास में हैं। इस प्रकार असंतुलित सामाजिक स्थिति समाज और देश तथा शिक्षकों दोनो के भविष्य के लिए लाभदायी नही हो सकती। प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक देवता, गुरू, मार्गदर्शक की भूमिका और दायित्व निभाया करते थे परंतु अब शिक्षकों में ऐसी संवेदनशील भावनाएं कहीं खोती सी जा रही हैं। परिवर्तित भूमिका में शिक्षक को विद्यार्थियों का मित्र अधिक बना दिया है। सक्रिय विचार क्रांति की सफलता के लिए चुने जाने वाले वर्गों में से अध्यापकों से विश्वासपूर्ण अपेक्षा करने का विशेष कारण यह है कि अध्यापक वर्ग अपेक्षाकृत अधिक जागरूक, चिंतक,स्रष्टा, संतोषी तथा उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। उसका ऐसा होना स्वभावत: इसलिए है कि वह देश के भावी नागरिकों का निर्माता होता है। वह अपने छात्रों को जिस प्रकार का बनाकर समाज को देगा ठीक उसी प्रकार का प्रशासन तथा राष्ट्र बनेगा। अध्यापक महानुभावों से निवेदन है कि वे अपनी गरिमा को समझें। यदि अध्यापक स्वयं को एक शिक्षाकर्मी के रूप में सरकारी सेवारत कर्मचारी के रूप में देखता है तो इससे बड़ा दुर्भाग्य इस देश का कुछ हो नहीं सकता।

2.4 शिक्षक की चिंताऐं और संघर्ष

भारतीय समाज में शिक्षकों की बदल रही छवि को हमारे साहित्य और फिल्मों में शिक्षक पात्रों के चरित्र चित्रण के माध्यम से सरलता से समझा जा सकता है। 20 वीं सदी में प्रेमचंद, शरत चंद्र, बंकिम चंद्र, रवींद्रनाथ टैगोर आदि ने अपनी रचनाओं में शिक्षकों को बहुत सकारात्मक रूप् में चित्रित किया गया है। इसी तरह फिल्मों के माध्यम से देश के लिए एक कर्मठ व निष्ठावान भावी पीढ़ी तैयार करने वाले शिक्षक पात्र भारतीय युवाओं को एक अत्यंत मूल्यवान संदेश देते थे जिसमे हमारे शाश्वत मूल्यों यथा न्याय, समानता, भाईचारा और सामाजिक सद्भाव को अक्षुण बनाय रखने की प्रेरणा हुआ करती थी। भारतीय समाज में आज शिक्षा से सम्बद्व समस्याओं ने विराट रूप धारण कर लिया है, जिनका स्थायी समाधान अब सरकार, शिक्षक और समाज के संयुक्त एवं दीर्घाकालीन प्रयासों से ही संभव हो सकेगा। आज जो सुनौतियां भारतीय शिक्षा के समक्ष आयी हैं, उनकी जडें बहुत गहरी 60 और 70 के दशकों तक जाती हैं। अतः स्पष्ट है कि भारतीय समाज और सरकार द्वारा शिक्षकों की भूमिका की नए सिरे से मूल्यांकन करने की आवश्यकता है। शिक्षकों में भी आत्मविवेचन की महती आवश्यकता है। वर्तमान में अध्यापक के सामने प्रमुख चुनौतियों के रूप में व्यापक गतिशील, मूल्यों पर आधारित, उत्तरदायी, वैश्वी◌ुकरण की

विषमताओं से निबटने का सामर्थ्य रखने वाले दूरदर्शी अध्यापक व्यवस्था का विकास करना हमारी सबसे बड़ी चुनौती है।

इसके अतिरिक्त दर्जनों ऐसे विषय हैं, जो अध्यापक ds क्षेत्र में चुनौतियां बनकर उभरे हैं। अध्यापक शिक्षा की गुणवत्ता, तकनीकी क्षेत्र का ज्ञान, सेवा में लेने की जटिल प्रक्रिया तथा समसामयिक विषयों का ज्ञान होना आवश्यक बताया है। एनसीईआरटी नई दिल्ली के पूर्व सलाहकार प्रो. ओ. एस. देवल ने कहा कि अध्यापक शिक्षा को भी विशिष्ट दर्जा दिया जाना चाहिए। शिक्षकों के समक्ष आने वाले चुनौतियों का मूल्यांकन कर उसके लिए नई और प्रभावी योजनाएं बनाना जरुरी है। इससे दोहरा फायदा होगा। पहला, खुद शिक्षक प्रभावी होगा तो उसकी शिक्षण संस्था भी प्रभावी होगी जबकि दूसरा और बड़ा फायदा विद्यार्थी वर्ग को मिलेगा। इस दिशा में सरकारी प्रयास भी कारगर होंगे। सरकार को चाहिए कि समय समय पर इस तरह की कार्यशालाओं का आयोजन कर शिक्षकों के समक्ष आने वाले चुनौतियां को जाने।

शिक्षकों से आह्वान किया जाता है कि कि वे इस पेशे को व्यवसायिक नहीं बनाएं। शिक्षा क्षेत्र में गुणवत्तापूर्ण माहौल बनाने में सहयोग करें। चुनौतियां तो आती रहेगी, उससे जुड़े हल निकालने का प्रयास करें। इसके अतिरिक्त समय समय पर होने वाली कार्यशालाओं और विषय से जुड़े सेमिनार में हिस्सा लें। व्यक्तिगत तौर पर तकनीकी क्षेत्र में रूझान दिखाएं एवं उससे जुड़े ज्ञान को अर्जित कर, विद्यार्थियों एवं सहयोगी शिक्षकों को भी इसकी जानकारी दें।

2.4.2 अध्यापक की चुनौतियां

भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक की कल्पना चिंतन करने की बजाय चिंतित रहने वाले एक मनुष्य के रूप में की जा सकती है। एक तरफ तो वह शैक्षिक प्रशासन के 'भययुक्त वातावरण' में जीता है और दूसरी तरफ स्कूल में बच्चों के लिए 'भयमुक्त माहौल' बनाने का काम भी करता है। भारत के विभिन्न राज्यों में अध्यापकों को तमाम अवसरों पर अधिकारियों की फटकार, कमीशन नहीं देने पर देख लेने की ललकार और सत्ता परिवर्तन के साथ योजनाओं में बदलाव की मार भी झेलनी पड़ती है। शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले प्रयोगों की लंबी सूची बताती है कि हमारे अध्यापक शिक्षाविदों की बनाई भूलभूलैया में लंबे समय से अपने धैर्य की परीक्षा दे रहे हैं। वे बच्चों को अपने सामने परीक्षा से भयमुक्त और पढ़ाई की जिम्मेदारी से मुक्त होते हुए देख रहे हैं। उनको बच्चों को पढ़ाना है, सिखाना है और प्रतियोगिता में आगे भी बढ़ाना है। लेकिन उसे अब यह काम बिना किसी दण्ड और दबाव के करना है। यह विचार उनके लिए अटपटा सा प्रतीत होता है। उन्होंने अपने छात्र-जीवन में बच्चों की पिटाई को एक स्वीकार्य विचार के रूप में देखा और जिया था। अब उनसे इसके ठीक विपरीत व्यवहार की उम्मीद की जा रही है। ऐसे में शिक्षक खुद को दोराहे पर पाते हैं कि आखिर करें तो क्या करें?

यह परिवर्तन अध्यापकों से ज़्यादा जिम्मेदारी और नए सिरे से तैयारी की मांग करता है। इसके लिए अध्यापकों को अतिरिक्त अध्ययन और कौशल विकास की जरूरत है ताकि वह बदलाव के नए दौर का नेतृत्व प्रभावशाली ढंग से कर सकें। अपनी एक किताब में शिक्षाविद् प्रोफेसर कृष्ण कुमार कहते हैं 'शिक्षा में दोहरी क्षमता होती है, यह विद्यार्थी को गढ़ने के अलावा अध्यापक को भी गढ़ती है। शिक्षाविज्ञान में

यह बात स्वीकार की गई है, मगर इसे कम ही लोग गंभीरता से लेते हैं। यह कहना एक चालू मुहावरा भर रह गया है कि पढ़ने वाले के साथ-साथ साथ पढ़ाने वाला भी सीखता है।' इस कथन में वह वास्तविक स्थिति की तरफ संकेत करते हैं। नए दौर में तेजी से बदलते परिवेश में एक शिक्षक को नए सिरे से चीजों को समझने और सीखने की आवश्यकता है। हमें भी अध्यापक और उसकी जटिल होती भूमिका को नए सिरे समझने की कोशिश करनी चाहिए। उनके साथ संवाद करना चाहिए और उनको सुनना चाहिए कि आखिर उनके मन में शिक्षा, समाज और आज के बदलाव को लेकर क्या हलचल हो रही है? अगर समाज का हिस्सा होने के नाते हम उनकी आलोचना करते हैंतो अच्छे काम के लिए तारीफ भी करनी चाहिए। अगर हमें बच्चों के बेहतर भविष्य के सपने आकर्षित करते हैं तो हमें अध्यापकों के विचारों को भी जानने की कोशिश करनी चाहिए। अक्सर सुनने में आता है कि सरकारी स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापकों को निजी स्कूलों में पढ़ने वाले अपने बच्चों को पढ़ाने में परेशानी होती है। इसके मुख्यतौर पर दो कारण हो सकते हैं।

पहला यह कि निजी स्कूल की किताबों का स्तर काफी ऊंचा है और दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अध्यापकों के कौशल विकास में पर्याप्त सुधार की जरूरत है। इसके लिए उनको नित नए विषयों को पढ़ने और समझने की कोशिश करनी होगी। इन तमाम चुनौतियों का समाधान परिवार,स्कूल समाज और प्रशासन के स्तर पर खोजने की आवश्यकता है। राजस्थान के अध्यापक आज भी 'लोकजुंबिश' के दिनों का जिक्र करते हैं। यह प्राथमिक शिक्षा की एकमात्र सफल योजना मानी जाती है। इसकी सफलता का श्रेय कुशल प्रशासक और शिक्षाविद् अनिल बोर्डिया के नेतृत्व को दिया जाता है।

उन्होंने राजस्थानी भाषा के जाने-माने साहित्यकार विजयदान देथा को भी अपनी इस मुहिम में शामिल किया था। इसकी कार्यशालाओं में विजयदान देथा भी शामिल होते थे। इस बात का उल्लेख विजयदान देथा के एक पत्र में मिलता है, जिसमें उन्होंने लोकजुंबिश परियोजना का जिक्र करते हुए इसके कार्यशाला की तारीफ की है। इसके आधार पर कहा जा सकता है कि अध्यापक बदलाव का विरोधी नहीं है, नए विचारों के खिलाफ नहीं है। वह सफलता की तमाम नई कहानियां लिखना चाहता है। बदलाव और समय के घूमते पहियों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहता है। लेकिन आसपास के माहौल की निराशा का दीमक उसके रचनात्मक मन के कोने को धीरे-धीरे चाट रहा है। इससे बाहर निकलने के लिए अध्यापकों को प्रोत्साहन और सहयोग की जरूरत है। सरकारी स्कूल के अधिकतर अध्यापक कहते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में तो सबकुछ ऊपर से तय होता है। हमें जैसा निर्देश मिलता है वैसा कर देते हैं। वे कहते हैं हमको अपने स्कूल के बच्चों की किताबों के बारे में सोचने का अधिकार नहीं है। हमारे स्कूल में क्या सुविधाएं होनी चाहिए और कितने अध्यापक होने चाहिए इसके बारे में हमारी राय लेने की जरूरत नहीं समझी जाती। अगर दोपहर के खाने (एमडीएम) और पढ़ाने की जिम्मेदारियों के बीच उलझकर सवाल करते हैं तो फटकार मिलती है। अगर एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में शिक्षक को सवाल पूछने का हक नहीं है तो फिर वह कैसे दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के भावी नागरिकों में जिज्ञासा के भाव को बढ़ावा देने का काम कर पाएगा?

आज का अध्यापक नई-नई योजनाओं के पैकेट में पुरानी चीजों को बदलता हुआ देखकर अपना सिर धुनता है कि आखिर वह क्या करे? ऐसे माहौल में वह उतना ही काम करना चाहता है ताकि काम चलता रहे। उनको प्रेरित करने वाला माहौल देने के लिए शिक्षाविदों, प्रशासन और समाज के प्रबुद्ध लोगों को आगे आना होगा। केवल अपनी कहने की बजाय अध्यापकों को सुनने की भी कोशिश करनी होगी। इससे शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त तमाम पूर्वाग्रहों की मजबूत जड़ों को झकझोरने में मदद मिलेगी। इसके साथ-साथ हमें शिक्षकों की क्षमता के ऊपर भरोसा करना सीखना होगा और शिक्षकों को भी बच्चों के ऊपर भरोसा करना होगा तभी हमारे स्कूलों में एक अच्छा माहौल बनाया जा सकेगा. ऐसा माहौल बच्चों की शिक्षा के अनुकूल होगा और अध्यापकों को भी अपने काम को जिम्मेदारी के साथ करने के लिए प्रेरित करेगा।

भारत की वर्तमान शैक्षिक व्यवस्था में अध्यापक की कल्पना चिंतन करने के बजाय, चिंतित रहने वाले एक मनुष्य के रूप में की जा सकती है. समाज के एक जागरूक सदस्य के रूप में अध्यापकों से हमारी बड़ी अपेक्षाएं होती है. लेकिन उनके सहयोग में संकोच करने वाली सोच का दबदबा समाज में दिखायी देता है.

2.4.2 शिक्षकों की जिम्मेदारी

हमारे समाज में एक बड़े तबके को लगता है कि भले बच्चे उनके हैं, लेकिन उनको पढ़ाने कीजिम्मेदारी तो शिक्षकों की है. स्कूल के अध्यापकों के बारे में उपरोक्त सच्चाई लोगों से बातचीत में सामने आती है. दूसरी तरफ निजी स्कूल के अध्यापकों की अपनी समस्याएं हैं. उनके ऊपर लगातार बेहतर प्रदर्शन करने का दबाव होता है. निजी स्कूलों के अध्यापकों को कम वेतन के अभाव में तनावपूर्ण परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है. अध्यापक एक ऐसा सामाजिक प्राणी है जो बेड़ियों में जकड़ा है. लेकिन उससे स्वतंत्र सोच वाले नागरिक बनाने की उम्मीद की जाती है. अध्यापक शैक्षिक प्रशासन के 'भययुक्त वातावरण' में जीता है और स्कूल में बच्चों के लिए 'भयमुक्त माहौल' बनाने का रचनात्मक काम करता है. बच्चों को सवाल पूछने और जवाब देने के लिए प्रेरित करता है. इससे अध्यापकों के सामने मौजूद विरोधाभाषा विचारों के टकराव को समझा जा सकता है. इसके कारण अध्यापकों को वैचारिक अंतर्विरोध का सामना करना पड़ता है. भारत के विभिन्न राज्यों में अध्यापकों को तमाम अवसरों पर अधिकारियों की फटकार, कमीशन न देने पर देख लेने की ललकार और सत्ता परिवर्तन के साथ योजनाओं में बदलाव की मार भी झेलनी पड़ती है. वह शिक्षाविदों की बुनी भूलभूलैया की प्रयोगशाला में लंबे समय से अपने धैर्य की परीक्षा दे रहा है. बच्चों को अपने सामने परीक्षा से भयमुक्त और पढ़ाई की जिम्मेदारी से मुक्त होते हुए देख रहा है. उसे बच्चों को पढ़ाना है. सिखाना है. प्रतियोगिता में आगे बढ़ाना है. उसे यह काम बिना किसी दण्ड और दबाव के करना है. यह सोच उनके लिए नई है. बच्चों के लिए अध्यापकों को अचानक से विनम्रता के साथ अपनी बात कहने के लिए प्रेरित करने वाला अंदाज भी नया है. यह बदलाव अध्यापकों से ज़्यादा जिम्मेदारी और नए सिरे से तैयारी की माँग करता है.

इसके लिए अध्यापकों को अतिरिक्त अध्ययन और कौशल विकास की जरूरत है ताकि वह बदलाव केनए दौर का नेतृत्व प्रभावशाली ढंग से कर सकें. शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार की भावी परिकल्पना को साकार करने में अपना योगदान दे सकें. अध्यापक की कोई भी अवधारणा उसे एक व्यक्ति और व्यवस्था के हिस्से के रूप में समझे बिना पूरी नहीं हो सकती है.एक अध्यापक समाज का हिस्सा होने के नाते पूर्वाग्रहों से संचालित होता है. लेकिन सही उदाहरण सामने आने पर खुद को बदलने की कोशिश भी करता है. वह अनेक पारिवारिक, सामाजिक और व्यवस्थागत आग्रहों से आतंकित है. अतीत के स्वर्णिम दिनों को याद करता है. अपने शिक्षकों की तारीफ करता है. अध्यापक जब अपने शुरुआती दिनों की ऊर्जा को याद करतें हैं तो उसकी आँखें चमक उठती हैं. लेकिन खुद को सैकड़ों बच्चों के बीच अकेला और असहाय पाकर उनका दिल बैठ जाता है. हमें उनको समझने की जरूरत है. उनके साथ संवाद करने और उनको सुनने की जरूरत है. समाज का नागरिक होने के नाते अगर आलोचना करते हैं तो अच्छे काम के लिए तारीफ भी करनी चाहिए. अगर हमें बच्चों के बेहतर भविष्य के सपने आकर्षित करते हैं तो हमें अध्यापकों के विचारों को भी जानने की कोशिश करनी चाहिए. उनसे सवाल पूछने चाहिए. उनके जवाब जानने चाहिए. सवाल और जवाब के बीच की खाई को पाटने के रचनात्मक सुझावों और रणनीतियां बनाने में उनको साझीदार बनाना चाहिए. बदलाव के संप्रत्यय को जमीनी स्तर पर लाने और क्रियान्वयन की सफलता सुनिश्चित करने के लिए ऐसा करना बेहद जरूरी है.

अगर आप घर के समीप स्थित स्कूल की महिला शिक्षकों से बात करें तो आपको पता चलेगा कि वे भी किताबें पढ़ना चाहती हैं. अपने स्कूल और घर के बच्चों को अच्छी तरह पढ़ाना चाहती हैं. लेकिन घर की तमाम जिम्मेदारियों के बीच उनको खुद पढ़ने का समय नहीं मिल पाता. ऐसे में परिवार और स्कूल में सहयोगियों की भूमिका पर भी सवाल खड़े होते हैं? यहाँ से समाधान के सूत्र मिल सकते हैं. तो वहीं अध्यापकों से अक्सर सुनने को मिलता है कि बीते आठ-दस सालों में उनको दस नई किताबें भी पढ़ने का मौका नहीं मिला. यहां ध्यान देने वाली बात है कि स्कूल की लायब्रेरी में बड़ी संख्या में किताबों की उपलब्धता के बावजूद ऐसा हो रहा है. अक्सर सुनने में आता है कि स्कूलों में पढ़ाने वाले अध्यापकों को निजी स्कूलों में पढ़ने वाले खुद के बच्चों को पढ़ाने में परेशानी होती है. इसके मुख्यतौर पर दो कारण हो सकते हैं. पहला यह कि निजी स्कूल की किताबों के स्तर काफी ऊंचा है. दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अध्यापकों के कौशल विकास में पर्याप्त सुधार की जरूरत है. इसके लिए उनको नित नए विषयों को पढ़ने और समझने की कोशिश करनी होगी. इन तमाम चुनौतियों का समाधान परिवार के स्तर पर, समाज के स्तर पर, प्रशासन के स्तर पर और स्कूल के स्तर पर खोजा जाना चाहिए. बातचीत से नज़रिए में बदलाव होगा और सहयोग में संकोच की प्रवृत्ति कमजोर होगी और अध्यापकों को लोगों से सहयोग मिलने की राह भी खुलेगी. अध्यापकों से बातचीत के दौरान पता चलता है कि वे बदलाव के तमाम खोखले मॉडल्स से बखूबी परिचित है. लेकिन बदलाव की होड़ और हड़बड़ी से अपरिचित है. उसके सोचने की स्वतंत्रता निर्देशों के जंजाल और वास्तविक स्थिति से तालमेल के संघर्ष में तिरोहित हो जाती है. ऐसा ज़मीनी स्तर के अनुभवों में बार-बार सिद्ध होता है. राजस्थान के अध्यापकों को आज भी लोकजुंबिश के दिनों की याद आती है, जो प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में एकमात्र सफल योजना मानी

जाती है. अध्यापक बदलाव के विरोधी नहीं हैं, वह नए विचारों और नवाचारों के खिलाफ नहीं है. वह सफलता की तमाम कहानियां लिखना चाहता है. बदलाव और समय के घूमते पहियों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना चाहता है. लेकिन आसपास के माहौल की निराशा का दीमक उसके रचनात्मक मन के कोने को धीरे-धीरे चाट रहा है. इससे उसे बाहर निकलने के लिए प्रोत्साहन की जरूरत है. अध्यापकों का कहना है कि शिक्षा के क्षेत्र में तो सबकुछ ऊपर से तय होता है. उनको अपने स्कूल के बच्चों की किताबों के बारे में सोचने का हक नहीं है. उसके स्कूल में क्या सुविधाएं होनी चाहिए और कितने अध्यापक होने चाहिए, इसके बारे में उसकी राय नहीं ली जाती. दोपहर के खाने में डूबती पढ़ाई और पढ़ाने की जिम्मेदारियों के बीच उलझकर सवाल करते हैं, तो फटकार मिलती है. अगर एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में शिक्षक को सवाल पूछने का हक नहीं है तो फिर वह कैसे दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के भावी नागरिक माने जाने वाले बच्चों में जिज्ञासा के भाव को बढ़ावा देने का हौसला कर पाएगा. ऐसा माहौल उसे धीरे-धीरे यथास्थिति का समर्थक और बदलाव का विरोधी बना देता है. हम भूलवश परिस्थिति को नजरअंदाज करके अध्यापकों को यथास्थिति के लिए जिम्मेदार मानने लगते हैं. अध्यापक नई-नई योजनाओं के पैकेट में पुरानी चीज़ों को बदलता हुआ देखकर अपना सिर धुनता है कि आखिर वह क्या करे ताकि वर्तमान में अपना योगदान सुनिश्चित कर सके. ऐसे माहौल में वह उतना ही काम करना चाहता है ताकि काम चलता रहे. उनको प्रेरित करने वाला माहौल देने के लिए शिक्षाविदों, प्रशासन और समाज के प्रबुद्ध लोगों को आगे आना होगा. केवल अपनी कहने की बजाय उनको सुनने की भी कोशिश करनी होगी. इससे सामूहिक रूप से शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त तमाम पूर्वाग्रहों की मजबूत जड़ों को झकझोरने में मदद मिलेगी. हमें शिक्षकों की क्षमता पर भरोसा करना सीखना होगा और शिक्षकों को बच्चों के ऊपर भरोसा करना होगा. तभी स्कूल में भरोसे और विश्वास का माहौल बनाया जा सकेगा

2.4.3 अध्यापक अवधारणा

अध्यापक की किसी भी अवधारणा को स्कूल की अवधारणा से अलग करके नहीं देखा जा सकता है. वर्तमान परिदृश्य में सरकारी और निजी स्कूलों के बीच का फर्क साफ-साफ नजर आता है. ऐसा लगता है मानो सरकारी स्कूल आँकड़ा बटोरने की एजेंसी बनकर रह गए हैं. ऐसे माहौल में शिक्षक के काम के बारे में अंदाजा लगाया जा सकता कि वह पूरे शैक्षिक सत्र के दौरान किन-किन गैरशैक्षणिक कामों में उलझा रहता है. जैसे मतदाता पहचान पत्र बनाना, पशुगणना, जनगणना इत्यादि. शिक्षकों की भूमिका में नए-नए काम भौतिक विकास की रणनीति के तहत शामिल हो रहे हैं जैसे स्कूलों में भवन निर्माण के दौरान शिक्षक से बिल्डर वाली भूमिका के निर्वहन की अपेक्षा की जाती है. आज के वर्तमान दौर में शिक्षा के क्षेत्र में कमीशन का कारोबार अपने पैर पसार चुका है. हर निर्माण के अनुमदोन का कमीशन सुनिश्चित किया जाता है. एक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर कहते हैं कि विकास के साथ-साथ भ्रष्टाचार स्वाभाविक रूप से आता है. इस संदर्भ में भ्रष्टाचार को आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार करने की सहज प्रवृत्ति दिखाई देती है. लेन-देन के इस कारोबार में शिक्षक अपनी 'आत्मा बेचने' को विवश है. एक अध्यापक अगर बच्चों की

पढ़ाई का स्तर बेहतर करना चाहता है तो पाठ्यक्रम के पीछे छूट जाने की स्थिति पैदा हो जाती है. इतनी विपरीत और कठिन परिस्थिति में डंडों के सहारे तनी हुई रस्सी पर चलने वाले खेल में संतुलन साधने की कोशिश करने वाले शिक्षकों को सलाम करने का मन होता है.

2.4.4 शिक्षा समुदाय/शिक्षकों के लिए 11 बिन्दुओं की शपथ

1. सर्वप्रथम मैं शिक्षण से प्यार करता हूँ। शिक्षण मेरी आत्मा होगी।
2. मै यह जानता हूँ कि मैं न केवल शिक्षार्थियों को बल्कि जोशीले युवाओं को भी आकार देने के लिए जिम्मेदार हूँ, जो पृथ्वी के नीचे, पृथ्वी पर और पृथ्वी के ऊपर एक शक्तिशाली संसाधन हैं। शिक्षण के महान उद्देश्य के लिए मैं जिम्मेदार होऊंगा।
3. मैं एक सर्वश्रेष्ठ अध्यापक बनने की कोशिश करूंगा जिसके लिए मैं अपने विशेष शिक्षण तरीकों को अपनाऊंगा जिसके सर्वोत्तम प्रदर्शन किया जा सके।
4. सभी शिक्षार्थियों के साथ मेरा व्यवहार माता, पिता, बहन और भाई के समान दयालु व स्नेहपूर्ण रहेगा ।
5. मैं अपने जीवन को इस प्रकार ढालूँगा कि मेरा जीवन अपने आप में मेरे शिक्षार्थियों के लिए एक संदेश हो।
6. मैं अपने शिक्षार्थियों और बच्चों के प्रश्न पूछने और जानकारी की भावना विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करूंगा ताकि वे एक जागरूक प्रबुद्ध नागरिक के रूप में उभरें।
7. मैं सभी शिक्षार्थियों के साथ समान व्यवहार करूंगा और किसी भी धर्म, समुदाय या भाषा के कारण किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करूंगा।
8. मैं अपनी शिक्षण क्षमताओं को लगातार बढ़ाता रहूँगा ताकि अपने शिक्षार्थियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर सकूँ।
9. मैं बड़ी शान से अपने शिक्षार्थियों की सफलताओं का जश्न मनाऊँगा।
10. मैं जानता हूँ कि एक शिक्षक होने के नाते राष्ट्र के विकास की सभी पहल शक्तियों में मैं एक महत्वपूर्ण योगदान दे रहा हूँ।
11. मैं स्वयं को महान विचारों से भरने और सोच तथा विचारों की महानता का प्रसार करने के लिए प्रयासरत रहूँगा।

ग्रीक के एक प्राचीन अध्यापक के कथन की याद दिलाता है :-

"मुझे सात साल के लिए एक बच्चा दे दो; उसके बाद भगवान या शैतान यह बच्चा ले लें। वे इस बच्चे में परिवर्तन नहीं ला सकते।"

यह महान/श्रेष्ठ शिक्षकों की शक्ति को दर्शाता है। सच्ची शिक्षा, उनके माहौल/आसपास में रहने वाले नागरिकों से जुडने और जिस स्थान (ग्रह) पर हम रहते है उसकी सच्चाई को समझने व प्रतिदिन की

घटनाओं का अर्जन है । मैं महान दार्शनिक डॉ. एस. राधाकृष्णन द्वारा विशेष रूप से शिक्षार्थियों और शिक्षकों के लिए कही बात के उदाहरण देना चाहता हूँ :-

"मानव की सदैव मानव की आवश्यकता रहती है और शिक्षक युवाओं को मौलिक शक्ति और मानव की सार्थकता का विशार प्रदान करके, उसे आध्यात्मिक गरिमा, एक महान राष्ट्रीय संस्कृति और एक सर्वसमभाव युक्त मानवता प्रदान कर इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है "

2.5 सारांश

शिक्षक केवल छात्रों को ही नहीं, उनके अभिभावकों को भी ज्ञान के आलोक से आलोकित कर सकता है। छात्रों के माध्यम से शिक्षक, अच्छी पुस्तकें उनके अभिभावकों तक समय- समय पर पहुँचाकर उन्हें भी स्वाध्याय परम्परा से जोडऩे का प्रयास करते रहें। इस प्रकार ज्ञान का आलोक घर- घर पहुँचाकर राजकीय सेवा के साथ- साथ महान पुण्य का भागीदार बनने का सौभाग्य भी मिलता है।शिक्षक छात्रों को पारिवारिक दायित्व का बोध कराएँ, समाजनिष्ठ बने रहने की प्रेरणा दें, पड़ोसियों के साथ मधुर संबंध बनाए रखने की प्रेरणा दें, स्वार्थपरता की हानियाँ एवं परमार्थ में ही स्वार्थ के सूत्रों को हृदयंगम कराएँ, स्वच्छता एवं स्वास्थ्य का महत्त्व समझाएँ तथा विद्यार्थियों को जीवन जीने की कला के सूत्रों का ज्ञान कराए। जिन कुरीतियों पर विजय पाना शासन, धर्माचार्य, पुलिस, अदालत, एवं सामाजिक संगठनों के लिए असंभव है, उसे संभव बनाना शिक्षकों के लिए बड़ा आसान है। यदि वे अपने विषय के शिक्षणके साथ- साथ इन कुरीतियों से परिचित कराकर भविष्य में इनसे बचने की प्रेरणा दें तो उनका प्रभाव छात्रों के जीवन पर पड़ेगा। महान कार्यों के प्रतिफल के रूप में समाज में सम्मान और आत्मसंतोष की उपब्धियाँ अवश्य मिलती हैं। जिन छात्रों का सुलेख अच्छा है, उनको दीवार लेखन की प्रेरणा देकर दीवारों पर प्रेरणाप्रद वाक्य लिखवाने चाहिए। इस प्रकार रास्ता चलते व्यक्तियों को सद्विचार देकर आप बहुत महत्वपूर्ण कार्य करा सकते हैं। विद्यालयों में समय- समय पर उत्सव, जयंतियाँ, राष्ट्रिय पर्व मनाए जाते हैं। ध्यान रखना चाहिए कि उनमें जो गीत गाए जाएँ वे राष्ट्रीयता, देशभक्ति से ओतप्रोत अपनी देश जाति के गौरव- गरिमा के अनुरूप हों तथा कविता सम्मेलन इत्यादि के द्वारा उनकी प्रतिभा को विकसित किया जा सकता है। शिक्षकों के पास एक बहुत बड़ी शक्ति है, उसे उन्हें समझना चाहिए। यदि प्यार और आत्मीयता के व्यवहार से उन्होंने छात्र वर्ग को अपनी बात मनवाने के लिए तैयार कर लिया तो समाज में कोई परिवर्तन कराना उनके लिए कठिन नहीं होगा।

2.6 शब्दावली

1. ज्योतिर्गमय - उजाले की ओर जाना
2. प्रतिष्ठित - जाना माना
3. संवाहक - आगे ले जाने वाले
4. स्नेहपूर्ण - प्रेम पूर्वक

5. प्रबुद्व - बौद्विक लोगो का वर्ग
6. परिकल्पना - किसी समस्या का काल्पनिक समाधान

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्र01. शिक्षक शिक्षा का महत्व बताइये।

उ0. भारतीय संस्कृति का एक सूत्र वाक्य प्रचलित है तमसो मा ज्योतिर्गमय इसका अर्थ है अंधेरे से उजाले की ओर जाना। इस प्रक्रिया को वास्तविक अर्थो में पूरा करने के लिए शिक्षाए शिक्षक और समाज तीनों की बड़ी भूमिका होती है। भारतीय समाज शिक्षा और संस्कृति के मामले में प्राचीनकाल से ही बहुत समृद्व रहा है। भारतीय समाज में जहां शिक्षा को शरीरए मन और आत्मा के विकास का साधन माना गया हैए वहीं शिक्षक को समाज के समग्र व्यक्त्वि के विकास का उत्तरदायित्व सौंपा गया है। भारतीय शिक्षा का इतिहास भारतीय सभ्यता का भी इतिहास है। भारतीय समाज के विकास और उसमें होने वाले परिवर्तनों की रूपरेखा में हम शिक्षा के स्थान और उसकी भूमिका को भी निरंतर विकासशील पाते हैं। महर्षि अरबिन्द ने एक बार शिक्षकों के सम्बन्ध में कहा था कि ष्ष् शिक्षक राष्ट्र की संस्कृति के चतुर माली होते हैं। वे संस्कारों की जड़ो में खाद देते हैं और अपने श्रम से सीचकर उन्हें शक्ति में निर्मित करते हैं।

प्र02. शिक्षकों की चिन्ताओं तथा तनाव पर एक लेख लिखिये।

उ0. समाज भी अपने भावी नागरिकों के निर्माण का वजन शिक्षकों पर डाल कर निश्चित हो जाता है लेकिन कहीं न कहीं वह शिक्षकों के प्रति अपने दायित्वों को भूल जाता है। वहीं दूसरी ओर शिक्षक अर्थाभावए पारिवारिक उल्झनों और समाज की उदासीनता के बाबजूद भी अपने दायित्वों एवं कार्यो के प्रति प्रामाणित रहने का प्रयास करते रहते हैं। विश्लेष्ट होता है कि आज के परिवेश में समाजए सरकार और शिक्षा में सुद्रढ़ सामंजस्य न होने के कारण शिक्षकों की सामाजिक प्रतिष्ठा में भारी गिरावट आ गयी है।

प्र03. अध्यापक के लिए प्रमुख चुनौतियां क्या हैं?

उ0. भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक की कल्पना चिंतन करने की बजाय चिंतित रहने वाले एक मनुष्य के रूप में की जा सकती है। एक तरफ तो वह शैक्षिक प्रशासन के श्भययुक्त वातावरणश् में जीता है और दूसरी तरफ स्कूल में बच्चों के लिए श्भयमुक्त माहौलश् बनाने का काम भी करता है। भारत के विभिन्न राज्यों में अध्यापकों को तमाम अवसरों पर अधिकारियों की फटकारए कमीशन नहीं देने पर देख लेने की ललकार और सत्ता परिवर्तन के साथ योजनाओं में बदलाव की मार भी झेलनी पड़ती है। शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले प्रयोगों की लंबी सूची बताती है कि हमारे अध्यापक शिक्षाविदों की बनाई भूलभूलैया में लंबे समय से अपने धैर्य की परीक्षा दे रहे हैं। वे बच्चों को अपने सामने परीक्षा से भयमुक्त और पढ़ाई की जिम्मेदारी से मुक्त होते हुए देख रहे हैं। उनको बच्चों को पढ़ाना हैए सिखाना है और प्रतियोगिता में आगे भी बढ़ाना है। लेकिन उसे अब यह काम बिना किसी दण्ड और दबाव के करना है। यह विचार उनके लिए अटपटा सा प्रतीत होता है। उन्होंने अपने छात्र.जीवन में बच्चों की पिटाई को एक स्वीकार्य विचार के रूप में देखा और जिया था। अब उनसे इसके ठीक विपरीत व्यवहार की उम्मीद की जा रही है। ऐसे में शिक्षक खुद को दोराहे पर पाते हैं कि आखिर करें तो क्या करें?

प्र04. शिक्षकों की जिम्मेदारी सामाजिक अभियन्ता के रूप मे है। स्पष्ट कीजिये।

उ0. किसी भी राष्ट्र व विश्व के निर्माण में शिक्षकों की भूमिका ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। शिक्षा का केंन्द्रिय घटक विद्यार्थी होता है और उन्हें सही दिशा निर्देशन करनेवाला प्रमुख घटक शिक्षक होता है। शिक्षा के अनेक उद्देश्यों की पूर्ति शिक्षकों के माध्यम से ही होती है। समाज का उनके प्रति कर्तव्य होता है और उनका भी समाज के प्रति उत्तरदायित्व रहता है। शिक्षकों के माध्यम से ही होती है। शिक्षक अपने दायित्वों का निर्वाह भली भांति करने हेतु सदैव तत्पर रहते हैं। शिक्षा में शिक्षक ही सामाजिक विकास का सूत्रधार होते हैं।

2. 8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. National University of Educational Planning and Administration (2014) *National Programme Design and Curriculum Framework*. New Delhi: NUEPA. Available from: https://xa.yimg.com/ kq/ groups/ 15368656/ 276075002/ name/ SLDP_Framework_Text_NCSL_NUEPA.pdf (accessed 14 October 2014).
2. Ulvik, M. and Sunde, E. (2013) 'The impact of mentor education: does mentor education matter?', *Professional Development in Education*, vol. 39, no. 5, pp. 754–70.
3. Zwarta, R.C., Wubbelsb, T., Bergena, T.C.M. and Bolhuisc, S. (2007) 'Experienced teacher learning within the context of reciprocal peer coaching', *Teachers and Teaching: Theory and Practice*, vol. 13, no. 2, pp. 165–87. Available from: http://expertisecentrumlerenvandocenten.nl/ files/ TTTP_collegiale_coaching_0.pdf (accessed 2 August 2014).
4. Haigh, N. (2005) 'Everyday conversation as a context for professional learning and development', *International Journal for Academic Development*, vol. 10, no. 1.
5. Hudson, P., Usak, M. and Savran-Gencer, A. (2013) 'Employing the five‐factor mentoring instrument: analysing mentoring practices for teaching primary science', *European Journal of Teacher Education*, vol. 32, no. 1, pp. 63–74.
6. *Learning to teach: an introduction to classroom research*, Open University OpenLearn unit. Available from: http://www.open.edu/ openlearn/ education/ learning-teach-introduction-classroom-research/ content-section-0 (accessed 22 October 2014).

7. National Council of Educational Research and Training (2005) *National Curriculum Framework*, National Council of Educational Research and Training. Available from: http://www.ncert.nic.in/ rightside/ links/ pdf/ framework/ english/ nf2005.pdf (accessed 25 September 2014).
8. Borko, H. (2004) 'Professional development and teacher learning: mapping the terrain', *Educational Researcher*, vol. 33, no. 8. Available from: http://www.aera.net/ uploadedFiles/ Journals_and_Publications/ Journals/ Educational_Researcher/ Volume_33_No_8/ 02_ERv33n8_Borko.pdf (accessed 30 July 2014).
9. Cohen, L., Manion, L. and Morrision, K. (2000) *Research Methods in Education*. London: RoutledgeFalmer.
10. Day, C. (1993) 'reflection: a necessary but not sufficient condition for professional development',*British Educational Research Journal*, vol. 19, no. 1, pp. 83–93.
11. Eraut, M. (2004) 'Informal learning in the workplace', *Studies in Continuing Education*, vol. 26, no. 2, pp. 247–73.
12. Goldacre, B. (2013) 'Building evidence into education' (online), March. Available from: http://dera.ioe.ac.uk/ 17530/ 1/ ben%20goldacre%20paper.pdf (accessed 20 November 2014).

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. शिक्षक शिक्षा को स्पष्ट करते हुए, शिक्षक बनने की राह में आने वाली समस्याओं का विश्लेषण कीजिये।
2. शिक्षकों की चिन्ताओं, तनाव तथा चुनौतियों पर एक लेख लिखिये।
3. शिक्षकों की सामाजिक जिम्मेदारी को स्पष्ट कीजिये।

इकाई 3 - साथियों के अनुभव, प्रयासों, आकांक्षाओं ,सपने आदि पर पुनःसुधार

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 शिक्षक की गरीमा एवं उत्तरदायित्व –
3.4 साथियों के अनुभव, प्रयासों, आकांक्षाओं, सपने आदि पर पुनः सुधार कर पायेगें
3.5 एन0सी0एफ0टी0ई0 2009 में दिये गये निर्देषानुसार नवीन क्रियाओं का आयोजन कर षिक्षण अधिगम अनुभव द्वारा अपनी आकांक्षाओं व सपनों को साकार कर सकेंगे
3.5.1 **सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का परिवर्तन**
3.5.2 **इस इकाई से विद्यालय प्रमुख क्या सीख सकते हैं**
3.5.3 **शिक्षक विकास पर परिदृश्य**
3.6 शिक्षकों की व्यावसायिक अधिगम और विकास (पीएलडी)
3.6.1 शिक्षकों के पीएलडी के मॉडल
3.7 विद्यालय-आधारित पीएलडी गतिविधियाँ
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

शिक्षा मनुष्य के सम्यक् विकास के लिए उसके विभिन्न ज्ञान तंतुओ को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया है। इसके द्वारा लोगों में आत्मसात करने, ग्रहण करने, रचनात्मक कार्य करने, दूसरों की सहायता करने और राष्ट्रीय महत्व के कार्यक्रमों में पूर्ण सहयोग देने की भावना का विकास होता है। इसका उद्देश्य व्यक्ति को परिपक्व बनाना है । नीति शास्त्र की उक्ति है-''ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।'' अर्थात् ज्ञान से हीन मनुष्य पशु के तुल्य है। ज्ञान की प्राप्ति शिक्षा या विद्या से होती है। दोनों शब्द पर्यायवाची हैं। 'शिक्ष' धातु से

शिक्षा शब्द बना है, जिसका अर्थ है-विद्या ग्रहण करना। विद्या शब्द 'विद' धातु से बना है, जिसका अर्थ है-ज्ञान पाना। ऋषियों की दृष्टि में विद्या वही है जो हमें अज्ञान के बंधन से मुक्त कर दे-'सा विद्या सा विमुक्तये'। भगवान श्री कृष्ण ने गीता में 'अध्यात्म विद्यानाम्' कहकर इसी सिद्धांत का समर्थन किया है। शिक्षा की प्रक्रिया युग सापेक्ष होती है। युग की गति और उसके नए-नए परिवर्तनों के आधार पर प्रत्येक युग में शिक्षा की परिभाषा और उद्देश्य के साथ ही उसका स्वरूप भी बदल जाता है। यह मानव इतिहास की सच्चाई है। मानव के विकास के लिए खुलते नित-नये आयाम शिक्षा और शिक्षाविदों के लिए चुनौती का कार्य करते है जिसके अनुरूप ही शिक्षा की नयी परिवर्तित-परिवर्धित रूप-रेखा की आवश्यकता होती है। शिक्षा की एक बहुत बड़ी भूमिका यह भी है कि वह अपनी संस्कृति, धर्म तथा अपने इतिहास को अक्षुण्ण बनाए रखें, जिससे की राष्ट्र का गौरवशाली अतीत भावी पीढ़ी के समक्ष द्योतित हो सके और युवा पीढ़ी अपने अतीत से कटकर न रह जाए। वर्तमान समय में शिक्षक को चाहिए कि सामाजिक परिवर्तन को देखते हुए उच्च शिक्षा में गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए केवल अक्षर एवं पुस्तक ज्ञान का माध्यम न बनाकर शिक्षित को केवल भौतिक उत्पादन-वितरण का साधन न बनाया जाए अपितु नैतिक मूल्यों से अनुप्राणित कर आत्मसंयम, इंद्रियनिग्रह, प्रलोभनोपेक्षा, तथा नैतिक मूल्यों का केंद्र बनाकर भारतीय समाज, अंतरराष्ट्रीय जगत की सुख-शान्ति और समृध्दि को माध्यम तथा साधन बनाया जाय। ऐसी शिक्षा निश्चित ही 'स्वर्ग लोके च कामधुग् भवति।' कामधेनु बनकर सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली और सुख-समृध्दि तथा शा़िन्त का संचार करने वाली होगी । प्रस्तुत इकाई अध्यापक साथियों के अनुभवए प्रयासोंए आकांक्षाओंए सपने आदि पर पुनः सुधार हेतु विविध क्रियाओं तथा अध्यापक की गरीमा को बढ़ाने हेतु एन0सी0एफ0टी0ई0 2009 के संदर्भ में प्रकाष डालती है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

1. षिक्षक की गरीमा एवं उत्तरदायित्वों से परिचित हो सकेंगे।
2. साथियों के अनुभवए प्रयासोंए आकांक्षाओंए सपने आदि पर पुनः सुधार कर पायेगें।
3. एन0सी0एफ0टी0ई0 2009 में दिये गये निर्देषानुसार नवीन क्रियाओं का आयोजन कर षिक्षण अधिगम अनुभव द्वारा अपनी आकांक्षाओं व सपनों को साकार कर सकेंगे।
4. शिक्षक विकास का परिदृश्य समझ पायेंगे।
5. शिक्षकों की व्यावसायिक अधिगम और विकासएपीएलडीए उपागम को समझ कर क्रियान्वित कर सकेंगे।
6. विद्यालयण्आधारित पीएलडी गतिविधियाँ जानकर व्यावसायिक स्व का विकास कर सकेंगे।

3.3 शिक्षक की गरीमा एवं उत्तरदायित्व -

हमारे समाज के निर्माण में अध्यापक की एक अहम भूमिका होती है। क्योंकि ये समाज उन्हीं बच्चों से बनता है जिनकी शिक्षा का जिम्मा एक अध्यापक पर होता है। ये अध्यापक ही है जो उसे समाज में एक अच्छा नागरिक बनाने के साथ उसका सर्वोत्म विकास भी करता है। शिक्षा देने के साथ ही वह उसे एक पेशेवर व्यक्ति बनने और एक अच्छा नागरिक बननें के लिए प्रेरित करता है। देश में मौजूद सभी सफल व्यक्तित्व के पीछे एक गुरु की भूमिका जरुर रहती है। एक बच्चे को मार्गदर्शन देने के साथ गुरु उसके व्यक्तित्व से भलिभांति परिचित कराता है, उसके अंदर छिपे समस्त गुणों से भलिभांति अवगत कराता है। अध्यापक की बात करें तो इसे ईश्वररुपी दूसरा दर्जा प्राप्त है। भारतीय धर्म में तीन ऋणों का उल्लेख मिलता है। ये क्रमश पितृ ऋण, ऋषि ऋण, और देव ऋण। कहा जाता है इन तीनो ऋणों का सफलता से पूर्ण करनें पर मनुष्य का जीवन सफल हो जाता है। माता पिता की सेवा करनें पर पितृ ऋण से मुक्त हो जाता है। उसी प्रकार ऋषि ऋण से मनुष्य तब मुक्त हो जाता है जब विद्दार्थी शिक्षा अध्य्यन कर अपनें माता-पिता और अध्यापक का सम्मान देता है। प्राचीन काल में विद्धार्थी गुरुकुल शिक्षा प्राप्त करते थे।

वे सभी प्रकार से सफल होकर ही तथा गुरु दक्षिणा देकर गुरुकुल से लौटते थे। उस समय विद्यार्थी वेद, शास्त्र पुराण तथा मानव मूल्य और सामाजिक जीवन के ज्ञान से परिवक्व हो जाते थे। परंतु आज स्थिति कुछ अलग है। वर्तमान में अपने ही कुछ पाठ्यक्रम आधारित ज्ञान पर विद्दार्थी को परिवक्व किया जाता है। साथ ही नैतिक जीवन से जेड़े मुल्यों को घर पर ही सिखा जाता है।

इसी को ध्यान में रखकर एक अध्यापक का उत्तरदायित्व बनता है कि वे अपने बच्चों को सही शिक्षा,प्रेरणा, सहनशीलता,व्यवहार में परिवर्तन तथा मार्गदर्शक प्रदान करें, उनके भविष्य को उज्जवल बनाने के साथ ही उन्हें एक बेहतर इंसान बनाए।

बात करें अध्यापक की तो इस समाज में आदर्श अध्यापक के उदाहरण कई सारे है, जिन्होंनें एक आदर्श अध्यापक की संज्ञा को परिपूर्ण किया है। एक आदर्श अध्यापक अच्छे और श्रेष्ठ गुणों से परिपूर्ण होता है। उन्हें अपने समय का सदुपयोग भलीभांति करना आना चाहिए। जो अध्यापक समय का पालन करते हुए अपनी योजनानुसार ज्ञान प्रदान करता है। वहीं सही गुरु कहलाता है। इस दुनिया में समय बेहद अमूल्य होता है यह जानें के बाद कभी लौटकर नहीं आता। अध्यापक को समय का पालन करना चाहिए। समय की उपयोगिता अगर एक गुरु को नहीं पता होगा तो वह अपने अधीन शिक्षा ग्रहण करनें वाले विद्धार्थियों को क्या सिखाएगें।

आदर्श अध्यापक में नम्रता और श्रध्दा का भाव होना आवश्यक है। उसे कभी भी क्रोध या घृणा स्वभाव को प्रदर्शित नहीं करना चाहिए। कबीर जी ने क्या खूब कहा है, ऐसी बाणी बोलिए मन का आपा खोय, अवरन को शीतल करें, आपहु शीतल होयय़।

बच्चों का ह्दय बेहद कोमल होता है। ये सामन्य सी एक बात है कि वे अपने आस-पास के वातावरण से ही सीखते है। इसलिए वे इस बात पर बेहद गौर देते है कि उनके द्वारा पढ़ाए जा रहे अध्यापक के हाव-भाव क्या है, बोलनें का लहजा क्या है, किस तरह की भाषा का इस्तेमाल किया जाता है। ये सभी बच्चों को प्रभावित करती है,इसलिए एक शिक्षक की भाषा बेहद मधुर कोमल मीठी होनी चाहिए। अध्यापक को

ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जिससे बच्चें उनसे प्यार करें। उन्हें अपनें मन की भावना,इच्छाओं व्यक्त करनें में सहज महसूस हो। मृदु वाणी से संसार को जीता जा सकता है, परंतु क्रोध, अंहकार, लोभ,से हम अपनें आप को हरा सकते है। ये मनुष्य के जीवन के सबसे बड़े शत्रु है।

3.4 साथियों के अनुभव, प्रयासों, आकांक्षाओं, सपने आदि पर पुनः सुधार कर पायेगें

अध्यापक के लिए आवश्यक है कि वह अपने बच्चों के समक्ष स्वास्थ्य की बातें करें। उन्हें स्वास्थ्य के बारे में सचेत करें। खेल-कूद विद्धार्थी के जीवन में महत्वपूर्ण क्रिया है। खेलकूद से बच्चे स्वस्थ रहते है। साथ ही साथ संतुलित भोजन लेने से दिमाग पर अच्छा असर होता है। मन पवित्र सा हो जाता है। शरीर में ऊर्जा का विकास होता है। वहीं प्रतिदिन 15 मिनट कम से कम व्यायाम करना आवश्यक है। शरीर में ताजगी बनी रहती है। और बाल भी लंबे बने रहते है। गुरु का दायित्व है कि वह बच्चों को अंदर और बाहर की सफाई से परिचित करें, और इसका महत्व भी बताए। साफ कपड़े,साफ जूते पहनकर विद्धालय में जाने से अच्छे ज्ञान की प्राप्ति होती है। अध्यापक को अपनें प्रत्येक बच्चे को सिखाना चाहिए कि सम्पति यदि चली गई को कुछ नहीं गया परन्तु स्वास्थ्य अगर चला गया तो सब कुछ चला गया।

अध्यापक द्वारा बच्चों को धर्म, संस्कृति,संगीत, संध्या,हवन, और धार्मिक त्योहार से अवगत कराना चाहिए। प्रत्येक त्यौहार चाहे हिंदु का हो या मस्लिम का हो खुशियां और प्यार ही लाताह है। मॉरीशस एक बहुजातिय देश है जहां सभी जाति के लोग मिल-जुल कर रहते है। त्योहार रिश्तों के संबधों को मजबूत बनाता है। बच्चों में हिंदी भाषा से लगाव पैदा करनें की रुचि बनाए रखनें के लिए कबीर के या रहीम के दोहें सिखाए। इन दोहों के साथ ही अपनी कक्षा का आरंभ करें। ताकि बच्चों को यह थोड़ा अलग लगे।

अध्यापक को अपनें बच्चों को अनाशासन सिखाना अति आवश्यक है। व्यक्ति को अपनें विकास, जीवन समाज और राष्ट्र के विकास के लिए अनुशासन बहुत ही जरुरी होता है। एक अनुशासित अध्यापक अपनें विद्दार्थियों का अच्छा मार्गदर्शक होता है। ये अध्यापक ही होता है जो अपने परिश्रम और तप से उनके चरित्र का निर्माण करता है। अध्यापक ही उनका प्रेरक होता है। अपनी श्रध्दा और विवेक से व बच्चों के जीवन में ज्योति जलाता है। अध्यापक को हमारे हिंदु धर्म के उन महानपुरुषो के जीवन से जुड़ी घटानाओं और कहानियों के बारे मे बताना चाहिए जिनसे उन्हें जीवन में सीख मिले। श्रीराम चन्द्रजी, लक्ष्मण जी, शत्रुघ्न तथा भरत के प्रेम को प्रदर्शित करनें की कहानियों का उनके सामनें इनका विवरण करें।

बच्चे इस संसार का वे फूल है जिसकी सुगंध से सारा संसार सुगन्धित होता है। अध्यापक द्वारा बच्चों के सर्वींगिण गुणों का विकास किया जाता है। वे उन सभी बच्चों के लिए प्रेरणास्रोत होते है। इसलिए अध्यापक को संयम, सदाचार, आचरण, विवेक, सहनशीलता से बच्चों को महान बनाते है। मनुष्य को जीवन बार बार नहीं मिलता इसीलिए मनुष्य अपनें कर्तव्य को अच्छी तरह से निर्वाह कर सकता है। अध्यापन एक उत्तम कार्य है। इस कार्य से आशीर्वाद मिलता है। और इससे जीवन सफल हो जाता है।

3.5 एन0सी0एफ0टी0ई0 2009 में दिये गये निर्देषानुसार नवीन क्रियाओं का आयोजन कर षिक्षण अधिगम अनुभव द्वारा अपनी आकांक्षाओं व सपनों को साकार कर सकेंगे -

शिक्षक होने के नाते समाज से हमारा गहरा सरोकार है और हम समझते हैं की हमारा दायित्व समाज में व्याप्त असमानताओं व शोषण के खिलाफ उठ रही आवाजों में अपनी आवाज मिलाना हैं. भारतीय समाज में महिलाओं, दलितों, आदिवासियों एवं अन्य मेहनतकश वर्गों के विरुद्ध शोषण व उत्पीडन की व्यवस्था लगातार बनी हुई है. भारत के वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य को जल, जंगल और जमीन के किसान-मजदूर-आदिवासी संघर्षों के सन्दर्भ से काटकर नहीं समझा जा सकता है. वर्तमान राजनैतिक सामाजिक व ऐतिहासिक परिस्तियों के सन्दर्भ में हम आरक्षण की व्यवस्था का समर्थन करते हैं साथ ही साम्प्रदायिकता को हम देश की सांस्कृतिक समरसता व मानवाधिकार के लिए खतरा मानते हैं . हम इन असमानताओं के विरुद्ध लड़ने और एक समतामूलक समाज के निर्माण में अपनी हिस्सेदारी निभाने की कोशिश करेंगे !

शिक्षक के रूप में आपकी भूमिका विद्यार्थियों को सीखने में सक्षम बनाने की है, तथा ऐसा करने के लिए स्थानीय परिवेश आपको कई परिस्थितियां और अवसर देता है। हमारे जीवन के प्रासंगिक है। अतः बाहरी परिवेश का उपयोग करने से विज्ञान को दैनिक जीवन से जोड़ने में मदद मिल सकती है। स्थानीय समुदाय और उसके संसाधनों का उपयोग करके विद्यार्थियों को आपके द्वारा पढ़ाई गई अवधारणाओं एवं विचारों से दिन-प्रतिदिन की समस्याएं हल करने में या अपना जीवन अधिक प्रभावी ढंग से जीने के बीच में सामंजस्य स्थापित करने में मदद मिलेगी।

शिक्षण प्रक्रिया में गुणवत्ता लाने के लिए बाहरी परिवेश को कक्षा के विस्तार के रूप में प्रयोग करने पर आधारित है। यह इस बात की भी छानबीन करती है कि आप अपने शिक्षण के लिए स्थानीय परिवेश का उपयोग एक संसाधन के रूप में कैसे कर सकते हैं

3.5.1 सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का परिवर्तन:

अध्यापकों की शिक्षा के लिए *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा: व्यावसायिक और सहृदय शिक्षक तैयार करने के लिए* (एनसीएफटीई) (नेशनल कौंसिल फॉर टीचर एजुकेशन, 2009) एक व्यावसायिक कार्यबल का विकास करने के महत्व पर जोर देती है। व्यावसायिक विकास एक जीवन-पर्यंत प्रक्रिया है और यह व्यावसायिक दक्षता का विकास करने में मुख्य तत्व है। डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी एजुकेशन प्रोग्राम (डीपीईपी) और सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) ने सभी सार्वजनिक क्षेत्र के विद्यालय के शिक्षकों के लिए विकास क्षेत्र और समूह संसाधन केंद्रों के माध्यम से व्यावसायिक विकास प्रदान करने के लिए कई स्थल उपलब्ध कराए हैं। इसके अलावा, इनस्टीट्यूट्स ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़ इन एजुकेशन (आईएएसई), कॉलेज ऑफ टीचर एजुकेशन (सीटीई), द स्टेट कौंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च (एससीईआरटी), डिस्ट्रिक्ट इनस्टीट्यूट्स ऑफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग (डाइट) और कुछ गैर-सरकारी संगठन शिक्षकों के लिए सेवारत

प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करते हैं। विकास न केवल सेवारत प्रशिक्षण के माध्यम से बल्कि प्रशिक्षक के नेतृत्व वाले वर्कशॉपों, क्लस्टर रिसोर्स सेंटर (सीआरसी) बैठकों, गलियारे में वार्तालाप, समकक्ष प्रशिक्षण, सामूहिक शिक्षा गतिविधियों आदि के माध्यम से भी किया जाता है।

एक विद्यालय प्रमुख के रूप में आपकी भूमिका में शिक्षकों को अपने कार्य (शिक्षक के व्यावसायिक विकास के नेतृत्व सहित) में सुधार करने के लिए सक्षम करना अव्यक्त रूप से शामिल होता है। यह काम सरल नहीं है क्योंकि इसमें ऐसी कुछ बाधाएं (बजट सहित) आती हैं जो आपके नियंत्रण में नहीं होती हैं। तथापि, आपके लिए विद्यालय-आधारित समर्थन रणनीतियों के माध्यम से शिक्षकों की प्रभाव को अधिकतम करने के अवसर उपलब्ध हैं, जिन पर इस इकाई में जोर दिया गया है।

3.5.2 इस इकाई से विद्यालय प्रमुख क्या सीख सकते हैं

- शिक्षकों का व्यावसायिक विकास विद्यालय के सुधार और छात्रों के सीखने के नतीजों को किस तरह से प्रभावित कर सकता है।
- अपने व्यावसायिक विकास की जरूरतों का आकलन करने में आपके शिक्षकों की मदद करने के लिए कुछ अवधारणाएं।
- सभी शिक्षकों के व्यावसायिक विकास की योजना बनाएं,उसकी निगरानी करें और उसे सक्षम करें।

3.5.3 शिक्षक विकास पर परिदृश्य

अध्यापन कोई स्थिर व्यवसाय नहीं है बल्कि प्रौद्योगिकी, सदैव बदलते ज्ञान, वैश्विक अर्थशास्त्र के दबावों और सामाजिक दबावों से प्रभावित होकर बदलता रहता है। इसका मतलब है कि इन परिवर्तनों को संबोधित करने के लिए अध्यापन के तरीकों और कौशलों का लगातार अद्यतन और विकास आवश्यक है। शिक्षकों का बदलाव की क्षमता से युक्त होना अनिर्वाय है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ, 2005) के शैक्षणिक स्वप्न को हमारी कक्षाओं में शिक्षक साकार कर सकें, इसके लिए महत्वपूर्ण है कि शिक्षकों का व्यावसायिक विकास किया जाय जिसका दायित्व विद्यालय प्रमुख के कंधों पर है। नेशनल प्रोग्राम डिजाइन एंड करिकुलम फ्रेमवर्क (2014) का मुख्य क्षेत्र 3 विद्यालय प्रमुख की क्षमाताओं का विकास करके पढ़ाने–सीखने की प्रक्रिया को *बच्चों पर केंद्रित रचनात्मक संलग्नता में रूपांतरित करने पर केंद्रित* है। इस तरह अपने विद्यालय में हर शिक्षक के सतत व्यावसायिक विकास (सीपीडी) को नियोजित करने, उसकी निगरानी करने और उसे सक्षम करने में विद्यालय प्रमुख की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

क्रिस्टोफर डे (1999) तर्क प्रस्तुत करते हैं कि शिक्षकों के व्यावसायिक विकास को एक जीवन-पर्यंत की गतिविधि के रूप में देखा जाना चाहिए जो उनके निजी और साथ ही व्यावसायिक जीवन पर और कार्यस्थल की नीति और सामाजिक सन्दर्भ पर ध्यान केंद्रित करती है। यह बात विद्यालय प्रमुख के ध्यान

में रखने के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि ठीक जैसे छात्र हमेशा सीखते ही रहेंगे, शिक्षक भी वैसे ही हमेशा सीखते रहेंगे। इस बात का कोई अंतिम बिंदु नहीं होता जब सारा ज्ञान और कौशल प्राप्त हो चुके होंगे।
हालांकि केंद्रीयीकृत पाठ्यक्रमों में व्यावसायिक विकास प्रायः मौजूद होता है, विद्यालय-आधारित व्यावसायिक विकास के कई लाभ हैं और वह अपने व्यावसायिक विकास में लगे शिक्षकों को कई बाधाओं पर पार करने में मदद करता है जिन्हें केंद्रीयीकृत पाठ्यक्रम प्रदान नहीं कर सकते; उदाहरण के लिए:

- शिक्षक-विशेष के व्यावसायिक विकास की जरूरतों को संबोधित करके
- विद्यालय की विशिष्ट जरूरतों और विशेषताओं को संबोधित करके
- विद्यालय के विकास के लिए विशिष्ट बिंदुओं के साथ समायोजित होकर
- एक साथ काम करने वाले शिक्षकों के समूह को लेकर क्षमता और कौशलों के निर्माण को आसान बनाकर
- अध्यापन की समय सारणी में व्यवधानों को कम करके, क्योंकि शिक्षक पढ़ाते समय अपने व्यावसायिक विकास पर काम कर सकते हैं
- छात्रों के सीखने के बारे में तत्काल प्रतिक्रिया की संभावना प्रदान करके, क्योंकि व्यावसायिक विकास कक्षा में हो सकता है
- विद्यालय प्रमुख को व्यावसायिक विकास की गुणवत्ता और ध्यान देने पर अधिक नियंत्रण देकर।

यह इकाई विद्यालय-आधारित उन गतिविधियों के माध्यम से माध्यमों से सेवारत शिक्षकों के विकास पर जोर देती है जो प्रभावी सीखने और अध्यापन की प्रक्रिया तथा साथ ही सारे विद्यालय के सुधार को प्रोत्साहित करती हैं।अगली गतिविधि का लक्ष्य आपकी यह सोचने में कि अध्यापन की परिपाटी में किन परिवर्तनों की जरूरत पड़ सकती है और एन0सी0एफ0टी0ई0 (2009) के मार्गदर्शन में, व्यावसायिक विकास के पाठ्यक्रमों अथवा विद्यालयी व्यावसायिक विकास में से किसी एक को चुनने में मदद करना है।एनसीएफटीई (2009) का अध्याय 3 ('पाठ्यचर्या का उपयोग करना और विकासशील शिक्षक का मूल्यांकन करना) अध्यापकों की शिक्षा की वर्तमान प्रथा और यह कैसे अधिक प्रक्रिया-आधारित बन सकती है, इस बात की पहचान करता है। एनसीएफटीई में पहचानी गई कुछ विशेषताओं पर नज़र डालें जिनका वर्णन चित्र 2 में किया गया है।

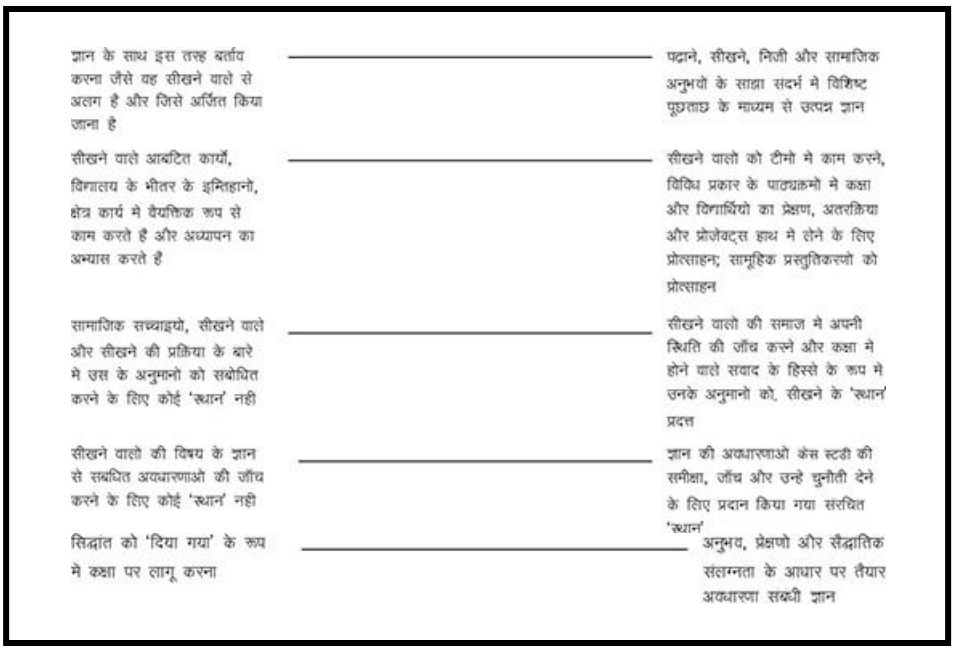

रेखा पर उस जगह निशान लगाएं जहाँ आपके अनुसार आपका विद्यालय शिक्षकों के विकास के संबंध में अधिकतर काम करता है: क्या यह अधिकतर बायीं ओर है या अधिकतर दायीं ओर है? यह याद रखें कि यह गतिविधि करते समय शिक्षकों पर छात्रों की तरह नहीं, बल्कि सीखने वालों की तरह ध्यान केंद्रित करना हैं।इस गतिविधि का लक्ष्य यह चिंतन शुरू करने में आपकी मदद करना था कि आपका विद्यालय वर्तमान में एनसीएफटीई (2009) में स्पष्ट और अनुशंसित की गई परिपाटियों की दिशा में किस हद तक काम कर रहा है ताकि 'चिंतन-मनन की परिपाटी को अध्यापक की शिक्षा का मुख्य लक्ष्य' बनाया जा सके और इस बात को मान्यता प्रदान की जा सके कि 'अध्यापन से संबंधित ज्ञान को शिक्षक द्वारा अपनी परिपाटियों पर आलोचनात्मक चिंतन के माध्यम से विविध संदर्भों में विविध जरूरतों को पूरा करने के लिए लगातार अनुकूलित करना होगा' (पृ. 19-20)। आदर्श रूप से आपके सभी अंकों को बाएं हाथ की ओर होना चाहिए जहाँ सीखने की प्रक्रिया सक्रिय और पारस्परिक क्रियात्मक है। वास्तविकता यह हो सकती है कि आपके अंक दायीं ओर या मध्य में हैं। यह आपको आगे बढ़ने (और चर्चा) के लिए दिशा प्रदान करता है।

एक विद्यालय प्रमुख के रूप में आप विद्यालय के सुधार के लिए और छात्रों के सीखने के परिणामों और स्टाफ के विकास के लिए जिम्मेदार हैं। आदर्श रूप से, आप अपने शिक्षकों के साथ अध्यापन करने के उनके दैनिक अनुभव के माध्यम से उनके ज्ञान को इस तरह विकसित करने के लिए काम करेंगे कि जिससे आपके शिक्षकों को अपने ज्ञान और कौशलों को एक खुलेपन के साथ साझा करने के लिए प्रोत्साहन

मिलता है ताकि वे एक दूसरे का अवलोकन कर सकें एक साथ और पाठ्यचर्या के अनेकों स्थानों (खेत, कार्यस्थल, घर, समुदाय और मीडिया) पर मुद्दों पर चर्चा कर सकें।

इसे सुगम करने के लिए, एक विद्यालय नेता होने के नाते, आपको उपयुक्त सुरक्षित 'स्थान' बनाने की जरूरत पड़ेगी जहाँ शिक्षकों को महसूस हो कि वे अपने अनुभव साझा कर सकते हैं, और जहाँ प्रयोग करने को प्रोत्साहन मिलता हो और अवधारणाओं की कद्र होती हो।

3.6 शिक्षकों की व्यावसायिक अधिगम और विकास (पीएलडी)

व्यावसायिक अधिगम और विकास (पीएलडी) का संबंध किसी भी व्यक्ति की अपने काम या प्रैक्टिस से संबंधित ज्ञान और कौशल अर्जित करने की क्षमता से, या जानकारी की तलाश करने और अपने व्यावसायिक क्षेत्र में स्वयं को सुविज्ञ बनाए रखने से है। नेशनल कौंसिल ऑफ टीचर एजुकेशन (एनसीएफटीई, 2009, पृ. 64-5) के अनुसार, शिक्षकों के पीएलडी के लिए मुख्य लक्ष्य हैं:

- अपनी खुद की परिपाटी का अन्वेषण, उस पर चिंतन-मनन और विकास करना
- अपने शैक्षणिक अनुशासन या विद्यालयी पाठ्यक्रम के अन्य क्षेत्रों के बारे में अपने ज्ञान को गहन करना और अद्यतित करना
- विद्यार्थियों और उनकी शिक्षा पर शोध और चिंतन करना
- शैक्षणिक और सामाजिक मुद्दों को समझना और अद्यतित करना
- शिक्षा/अध्यापन से व्यावसायिक रूप से जुड़ी अन्य भूमिकाओं के लिए तैयारी करना, जैसे अध्यापकों की शिक्षा, पाठ्यचर्या विकास या परामर्श
- बौद्धिक अलगाव से बाहर निकलना और कार्यस्थल में अन्य लोगों, विशिष्ट विषयों के क्षेत्र में काम कर रहे शिक्षकों और शिक्षाविदों और साथ ही निकटतम वृहत्समाज में बुद्धिजीवियों के साथ अनुभव और अंतदृर्ष्टियाँ साझा करना।

  एससीईआरटी DIETs के साथ मिलकर शिक्षकों के लिए अधिकांश (यदि सभी नहीं तो) आधिकारिक पीएलडी उपलब्ध कराने के लिए काम करता है। यह काम आम तौर पर विशेष रूप से आयोजित कार्यशालाओं में किया जाता है जहाँ व्यक्तिगत उपस्थिति आवश्यक होती है। यह प्रशिक्षण समस्यापूर्ण हो सकता है क्योंकि यह केवल सामान्य मुद्दों को ही संबोधित कर सकता है और कई बार प्राथमिक रूप से नई नीति और हस्तक्षेप की जानकारी देने के मार्ग का काम करता है।

  आपके शिक्षकों के कौशलों के स्तर और विकास की जरूरतें भिन्न होती हैं। उनकी अलग–अलग अभिप्रेरणाओं और विशेषताओं का मतलब यह भी होगा कि आपको उन्हें पीएलडी के साथ संलग्न होने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु अलग-अलग तरीकों का उपयोग करना पड़ेगा।

3.6.1 शिक्षकों के पीएलडी के मॉडल

हालांकि, पीएलडी को प्रायः बनाया तथा उसका प्रबंध किया जाता है, यह औपचारिक और अनौपचारिक दोनों तरीकों से किया जा सकता है। इसे व्यक्तिगत रूप से, छोटे समूहों में या बड़े पैमाने पर किया जा सकता है, और इसमें क्रिसात्मक शोध/एक्शन रिसर्च परिपाटी पर चिंतन-मनन, मार्गदर्शन और समकक्ष प्रशिक्षण जैसे तरीके शामिल हो सकते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि अनौपचारिक सीखने की प्रक्रिया को आपके विद्यालय में सुसंरचित प्रशिक्षण कार्यक्रमों के रूप में महत्व और मान्यता दी जाए ताकि सुनिश्चित हो कि विकास के अवसरों की पूरी शृंखला का उपयोग हो सके।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (आईसीटी) – टीवी, रेडियो और इंटरनेट सहित – ज्ञान सुलभ कराने, या महत्वपूर्ण और नई जानकारी के वृहत्प्रसार के लिए उपयोगी है। आईसीटी संबंधित विशेषज्ञों के साथ संपर्क करने और जानकारी प्राप्त करने में भी आपके शिक्षकों की मदद करेगी। इंटरनेट आप और आपके स्टाफ को मुफ्त संसाधनों (जिनमें से कई, TESS INDIA सहित, ओईआर के रूप में ऑनलाइन वितरित किए जाते हैं) और नेशनल कौंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग में सेंट्रल इनस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी (CIET) द्वारा समन्वयित मुक्त शैक्षिक संसाधन के राष्ट्रीय भंडार (एनआरओईआर) का उपयोग करके आपके विद्यालय में व्यावसायिक विकास में लगाने का अवसर प्रदान करता है। इन ऑनलाइन संसाधनों के लिए लिंक इस इकाई के अंत में पाए जा सकते हैं।

कक्षाओं में पीएलडी गतिविधियों को अध्यापन और सीखने की प्रक्रिया को सुधारने का प्राथमिक साधन होना चाहिए। यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षकों को अपनी कक्षा की परिपाटी पर चिंतन करने और उसे सुधारने के लिए समय और जगह दी जाय। सभी शिक्षक, चाहे वे कितने ही प्रभावी क्यों न हों, दूसरों की अच्छी परिपाटी को देखकर बहुत कुछ सीखेंगे। यह प्रायः विद्यालय में ही उपलब्ध लेकिन 'अदृश्य' हो सकता है यानी हो सकता है स्टाफ को पता न हो कि किसे देखना चाहिए या किसकी परिपाटी से वे लाभान्वित हो सकते हैं। इस तरह नेतृत्व की प्रायः 'अदृश्य' उत्तम परिपाटी को स्टाफ के लिए अधिक दृश्य बनाने और इस प्रकार अन्य लोगों के लिए उसे मूल्यवान बनाने में मदद करने का वाहक बनना शामिल हो सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि आप समझें कि विद्यालय में उत्तम परिपाटी कहाँ विद्यमान है और आप इसका उपयोग सारे शिक्षक समुदाय के लाभ के लिए करने में सक्षम हों। इस प्रक्रिया में पहला कदम है हर एक शिक्षक की अपनी परिपाटी के बारे में प्रभावशाली सीखने वाला बनने में मदद करना और उसे सुधारने के लिए कदम उठाने में सशक्त महसूस करना।

ऐसे कई तरीके हैं जिनसे शिक्षक कक्षा में सीख सकते हैं, जिनमें से सभी स्थिति अनुसारन अधिगम प्रक्रिया (सिचुएटेड लर्निंग) पर आधारित हैं – जहाँ शिक्षक या तो कुछ नई चीज आजमाता है या किसी ऐसी चीज को अनुकूलित करता है जो वह पहले से करता आया है। शिक्षकों को स्वयं के लिए नई अवधारणाओं को आजमाने के लिए पर्याप्त आत्मविश्वास की जरूरत होती है, और स्वीकार करना होता है कि वह कभी-कभी गलत हो सकती है; फिर उन्हें यह सोचने के लिए अवसर की आवश्यकता होती है कि क्या हुआ था और वह गलत क्यों हुआ, ताकि वे अपने काम को आगे संशोधित कर सकें। स्थिति अनुसारन अधिगम (सिचुएटेड लर्निंग) को कई तरीकों से आयोजित और समर्थित किया जा सकता है ये तरीके नीचे सूचीबद्ध हैं।

3.7 विद्यालय-आधारित पीएलडी गतिविधियाँ

1. क्रिसात्मक शोध/एक्शन रिसर्च, जहाँ शिक्षक दिलचस्पी या चिंतन के किसी विशिष्ट क्षेत्र को जानने का निश्चय करता है, अपने काम को विकसित करने के लिए कक्षा में नया तरीका आजमाता है, तथा छात्रों के व सीखने पर उसके प्रभाव पर विचार करता है, और फिर समीक्षा करता है कि आगे क्या किया जाना है। क्रिसात्मक शोध/एक्शन रिसर्च चक्रीय होता है, क्योंकि अगले कदमों को पहचानने का अंतिम चरण अगली नई अवधारणा का अन्वेषण करने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है।
2. सीखने की सहयोगात्मक प्रक्रिया, जहाँ शिक्षक अन्य शिक्षकों के साथ मिलकर तुलना करके अभ्यास को साझा, और योजनाएं विकसित करके सीखेंगे। इसका आयोजन अभ्यास के एक विशेष पहलू को संबोधित करने के लिए करना चाहिए (उदा. विद्यालय भर में आकलन की समीक्षा के लिए कोई कार्यकारी समूह)।
3. टीम में अध्यापन, जहाँ दो शिक्षक किसी पाठ या पाठों की शृंखला को प्रस्तुत करने के लिए अपने संयोजित कौशलों का उपयोग साथ मिल कर करते हैं ताकि उनकी विविधता, गति, छात्रों पर संकेंद्रन, नवीनता और प्रयोग प्रदर्शन में वृद्धि हो और वे एक दूसरे से सीखें या मिलकर नए तरीके आजमाएं।
4. अभ्यास पर चिंतन-मनन, एक अकेली गतिविधि हो सकता है अथवा अन्य लोगों के साथ भी साझा किया जा सकता है जिसमें किसी सहकर्मी द्वारा या समूह में प्रश्न पूछकर विचारों को प्रेरित किया जाता है। चिंतन-मनन को प्रेरित करने के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर है सहकर्मियों द्वारा पाठ के बारे में व्यक्त किए गए विचारों पर चर्चाएं।
5. शिक्षक नेटवर्क विद्यालय-आधारित नेटवर्क और विद्यालय-ट्विनिंग भागीदारी में हिस्सा लेना वे अन्य तरीके हैं जिनसे शिक्षकों को अपने अनुभवों को साझा करने, समस्याओं पर चर्चा करने, अपने समकक्ष समूह की अवधारणाओं से संपर्क में आने, और भविष्य के लिए चिंतन-मनन तथा योजना बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। आप इसका अन्वेषण आपने विद्यालय के पास स्थित विद्यालयों के अन्य विद्यालय प्रमुखों के साथ कर सकते हैं।

3.8 सारांश

इस इकाई में आपने देखा कि शिक्षक विकास क्या होता है, इसमें क्या शामिल हो सकता है और विद्यालय में रहते हुए क्या सीखा जा सकता है। पाठ्यक्रम और प्रशिक्षण ही शिक्षा प्राप्त करने का एकमात्र तरीका नहीं हैं। अध्यापन के पेशे में सतत सीखना शामिल होता है; विद्यालय प्रमुख को लगातार विकसित हो रहे स्टाफ के समूह के लिए अपेक्षाओं को बढ़ाने, और विकसित होने के अवसरों को केस स्टडी में भूमिका निभानी होती है।

आपने कुछ टेम्प्लेट आजमाएं हैं जो विद्यालय में पीएलडी को लागू करने में आपकी सहायता कर सकते हैं और कुछ वृत्त अध्ययन देखीं हैं जो आपको स्टाफ को संलग्न करने और रिकार्ड रखने के तरीकों के बारे में सोचने में आपकी मदद करते हैं। लेकिन रोमांचक हिस्सा तो तब आता है जब आप छात्रों के सीखने के अनुभव को लाभ पहुँचाने के लिए स्टाफ का उनके काम को सुधारने में नेतृत्व करते हैं। जो शिक्षक स्वयं के सीखने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं वे छात्रों को भी अपने सीखने के बारे में उसी तरह से महसूस करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह इकाई इकाइयों के उस सेट या परिवार का हिस्सा है जो पढ़ाने-सीखने की प्रक्रिया को रूपांतरित करने के महत्वपूर्ण क्षेत्र से सम्बन्धित है।

3.9 शब्दावली

1. **सम्यक - हमेषा सही**
2. **द्योतिक - प्रस्तुत करना**
3. **मॉडल - उपागम**
4. **इन्द्रियनिग्रह - इन्द्रियों का शुद्विकरण करना**
5. **प्रलोभनोपेक्षा - प्रलोभनों की अपेक्षा**
6. **अनुप्रमाणित - पुष्टि करना**

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्र0 षिक्षक गरीमा एवं उत्तरदायित्व से आप क्या समझते है ?

उ0 हमारे समाज के निर्माण में अध्यापक की एक अहम भूमिका होती है। क्योंकि ये समाज उन्हीं बच्चों से बनता है जिनकी शिक्षा का जिम्मा एक अध्यापक पर होता है। ये अध्यापक ही है जो उसे समाज में एक अच्छा नागरिक बनाने के साथ उसका सर्वोत्म विकास भी करता है। शिक्षा देने के साथ ही वह उसे एक पेशेवर व्यक्ति बनने और एक अच्छा नागरिक बननें के लिए प्रेरित करता है। देश में मौजूद सभी सफल व्यक्तित्व के पीछे एक गुरु की भूमिका जरुर रहती है। एक बच्चे को मार्गदर्शन देने के साथ गुरु उसके व्यक्तित्व से भलिभांति परिचित कराता है, उसके अंदर छिपे समस्त गुणों से भलिभांति अवगत कराता है। अध्यापक की बात करें तो इसे ईश्वररुपी दूसरा दर्जा प्राप्त है।

प्र0 एन0 सी0 एफ0 टी0 ई0 मे अध्यापक विकास की प्रमुख बातें क्या हैं ?

उ0 एक व्यावसायिक कार्यबल का विकास करने के महत्व पर जोर देती है। व्यावसायिक विकास एक जीवन-पर्यंत प्रक्रिया है और यह व्यावसायिक दक्षता का विकास करने में मुख्य तत्व है। डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी एजुकेशन प्रोग्राम (डीपीईपी) और सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) ने सभी सार्वजनिक क्षेत्र के विद्यालय के शिक्षकों के लिए विकास क्षेत्र और समूह संसाधन केंद्रों के माध्यम से व्यावसायिक विकास प्रदान करने के लिए कई स्थल उपलब्ध कराए हैं। इसके अलावा, इनस्टीट्यूट्स ऑफ एडवांस्ड स्टडीज़ इन एजुकेशन (आईएएसई), कॉलेज ऑफ टीचर एजुकेशन (सीटीई), द स्टेट कौंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च

(एससीईआरटी), डिस्ट्रिक्ट इनस्टीट्यूट्स ऑफ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग (डाइट) और कुछ गैर-सरकारी संगठन शिक्षकों के लिए सेवारत प्रशिक्षण कार्यक्रम संचालित करते हैं। विकास न केवल सेवारत प्रशिक्षण के माध्यम से बल्कि प्रशिक्षक के नेतृत्व वाले वर्कशॉपों, क्लस्टर रिसोर्स सेंटर (सीआरसी) बैठकों, गलियारे में वार्तालाप, समकक्ष प्रशिक्षण, सामूहिक शिक्षा गतिविधियों आदि के माध्यम से भी किया जाता है।

एक विद्यालय प्रमुख के रूप में आपकी भूमिका में शिक्षकों को अपने कार्य (शिक्षक के व्यावसायिक विकास के नेतृत्व सहित) में सुधार करने के लिए सक्षम करना अव्यक्त रूप से शामिल होता है। यह काम सरल नहीं है क्योंकि इसमें ऐसी कुछ बाधाएं (बजट सहित) आती हैं जो आपके नियंत्रण में नहीं होती हैं। तथापि, आपके लिए विद्यालय-आधारित समर्थन रणनीतियों के माध्यम से शिक्षकों की प्रभाव को अधिकतम करने के अवसर उपलब्ध हैं, जिन पर इस इकाई में जोर दिया गया है।

प्र0 शिक्षकों की व्यावसायिक अधिगम और विकास (पीएलडी) का अर्थ बताइये।

उ0 व्यावसायिक अधिगम और विकास (पीएलडी) का संबंध किसी भी व्यक्ति की अपने काम या प्रैक्टिस से संबंधित ज्ञान और कौशल अर्जित करने की क्षमता से, या जानकारी की तलाश करने और अपने व्यावसायिक क्षेत्र में स्वयं को सुविज्ञ बनाए रखने से है। नेशनल कौंसिल ऑफ टीचर एजुकेशन (एनसीएफटीई, 2009, पृ. 64-5) के अनुसार, शिक्षकों के पीएलडी के लिए मुख्य लक्ष्य हैं:

- अपनी खुद की परिपाटी का अन्वेषण, उस पर चिंतन-मनन और विकास करना
- अपने शैक्षणिक अनुशासन या विद्यालयी पाठ्यक्रम के अन्य क्षेत्रों के बारे में अपने ज्ञान को गहन करना और अद्यतित करना
- विद्यार्थियों और उनकी शिक्षा पर शोध और चिंतन करना
- शैक्षणिक और सामाजिक मुद्दों को समझना और अद्यतित करना

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Ball, A.F. (2009) 'Toward a theory of generative change in culturally and linguistically complex classrooms', *American Educational Research Journal*, vol. 46, no. 1, pp. 45–72.
2. Borko, H. (2004) 'Professional development and teacher learning: mapping the terrain', *Educational Researcher*, vol. 33, no. 8. Available from: http://www.aera.net/ uploadedFiles/ Journals_and_Publications/ Journals/ Educational_Researcher/ Volume_33_No_8/ 02_ERv33n8_Borko.pdf (accessed 30 July 2014).
3. Cohen, L., Manion, L. and Morrision, K. (2000) *Research Methods in Education*. London: RoutledgeFalmer.

4. Day, C. (1993) 'reflection: a necessary but not sufficient condition for professional development',*British Educational Research Journal*, vol. 19, no. 1, pp. 83–93.
5. Eraut, M. (2004) 'Informal learning in the workplace', *Studies in Continuing Education*, vol. 26, no. 2, pp. 247–73.
6. Goldacre, B. (2013) 'Building evidence into education' (online), March. Available from: http://dera.ioe.ac.uk/ 17530/ 1/ ben%20goldacre%20paper.pdf (accessed 20 November 2014).
7. Haigh, N. (2005) 'Everyday conversation as a context for professional learning and development', *International Journal for Academic Development*, vol. 10, no. 1.
8. Hudson, P., Usak, M. and Savran-Gencer, A. (2013) 'Employing the five‐factor mentoring instrument: analysing mentoring practices for teaching primary science', *European Journal of Teacher Education*, vol. 32, no. 1, pp. 63–74.
9. *Learning to teach: an introduction to classroom research*, Open University OpenLearn unit. Available from: http://www.open.edu/ openlearn/ education/ learning-teach-introduction-classroom-research/ content-section-0 (accessed 22 October 2014).
10. National Council of Educational Research and Training (2005) *National Curriculum Framework*, National Council of Educational Research and Training. Available from: http://www.ncert.nic.in/ rightside/ links/ pdf/ framework/ english/ nf2005.pdf (accessed 25 September 2014).
11. National University of Educational Planning and Administration (2014) *National Programme Design and Curriculum Framework*. New Delhi: NUEPA. Available from: https://xa.yimg.com/ kq/ groups/ 15368656/ 276075002/ name/ SLDP_Framework_Text_NCSL_NUEPA.pdf (accessed 14 October 2014).
12. Ulvik, M. and Sunde, E. (2013) 'The impact of mentor education: does mentor education matter?', *Professional Development in Education*, vol. 39, no. 5, pp. 754–70.
13. Zwarta, R.C., Wubbelsb, T., Bergena, T.C.M. and Bolhuisc, S. (2007) 'Experienced teacher learning within the context of reciprocal peer

coaching', *Teachers and Teaching: Theory and Practice*, vol. 13, no. 2, pp. 165–87. Available from: http://expertisecentrumlerenvandocenten.nl/ files/ TTTP_collegiale_coaching_0.pdf (accessed 2 August 2014).

3.12निबंधात्मक प्रश्न

1. शिक्षक की गरीमा एवं उत्तरदायित्वों पर प्रकाष डालिये।
2. शिक्षक साथियों के अनुभवों, प्रयासों, आकांक्षाओं और सपनों को प्रमुख किन विधियों के द्वारा सुधारा जा सकता है ?
3. शिक्षकों के पीएलडी मॉडल को समझाइये।

इकाई 4 - शिक्षक से अपेक्षित मूल्यों तथा व्यावसायिक नीतियों की समझ विकसित करना जिससे वह स्वयं तथा शिक्षण क्षेत्र से जुड़े वातावरण में सामंजस्य स्थापित कर सके

Building an Understanding about Values and Professional Ethics as a Teacher to Live in Harmony with one's Self and Surroundings

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 शैक्षणिक व्यवस्था में मानवीय मूल्यों का महत्व:
4.4 शिक्षण क्षेत्र में व्यावसायिक नीतियाँ: सैद्धांतिक तथा व्यवहारिक पक्ष:
4.5 NCTE द्वारा शिक्षण क्षेत्र से जुड़ी व्यावसायिक नीतियों के सिद्धांत:
4.6 सारांश
4.7 शब्दावली
4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

कुशल शिक्षण हेतु शिक्षकों में कुछ गुणों का होना अत्यन्त आवश्यक है जिनके अभाव में हम एक योग्य तथा कुशल शिक्षक की परिकल्पना नहीं कर सकते हैं। निश्चित शिक्षण विषय में एक व्यापक आधार और ज्ञान; उसे छात्रों तक पहुँचाने का कौशल; पाठ्यक्रम को संगठित व व्यवस्थित करना; शिक्षण कौशल, छात्र अधिगम तथा मूल्यांकन से जुड़े विषय विशिष्ट विधियों का ज्ञान; अलग-अलग पृष्ठभूमि के छात्रों का प्रभावी तरीके से शिक्षण; तथा सदैव छात्र हित में अपनी कौशल व क्षमताओं का विकास करते रहना उन गुणों में से हैं। किसी भी शिक्षक द्वारा किए जा रहे शिक्षण की गुणवत्ता का अनुमान एवं आकलन कक्षाओं में विद्यार्थियों के प्रदर्शन के द्वारा किया जा सकता है। छात्र उपलब्धि में योग्य व प्रभावी शिक्षक का योगदान सबसे महत्वपूर्ण हैं। किन्तु क्या बस ऊपर गए गुण या कौशल ही किसी शिक्षक के योग्य व

प्रभावी होने के लिए पूर्ण है। इस प्रश्न का उत्तर उस आवश्यक नींव की तरफ संकेत करता है जो पूरी शिक्षा प्रणाली की धुरी है। एक शिक्षक को प्रभावी बनाने में न सिर्फ उसके शिक्षण कौशलों का योगदान होता है बल्कि शिक्षण से जुड़े उसके मूल्य व व्यावसायिक नीतियाँ भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती हैं। अन्य सभी व्यवसायों की तरह शिक्षण व्यवसाय में भी अपनी एक व्यावसायिक आचार संहिता होनी चाहिए। जो वास्तव में शिक्षण की गरिमा और अखंडता को सुनिश्चित कर सके। बच्चों के निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2009 के आधार पर यदि देखा जाए तो शिक्षक के दायित्व और भी बढ़ जाते हैं। ऐसे में, यह अति आवश्यक है कि शिक्षण समुदाय की एक व्यावसायिक व नैतिक संहिता हो जिसका हर शिक्षक पालन करें।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी

1. शैक्षणिक व्यवस्था में मानवीय मूल्यों के महत्व की समीक्षा कर सकेंगे।
2. शिक्षक मूल्यों तथा व्यावसायिक नीतियों के बदलते प्रतिमान (Paradigm Shift) पर चर्चा कर सकेंगे।
3. NCTE (National Commission for Teacher Education) द्वारा दिए गये दिशानिर्देशों के अनुसार, शिक्षक से अपेक्षित व्यावसायिक नीतियों का वर्णन कर सकेंगे।
4. शिक्षक का छात्रों, अभिभावकों तथा सहयोगियों के प्रति दायित्वों का उल्लेख कर सकेंगे।
5. एक छात्र-अध्यापक और कालांतर में शिक्षक के रूप में अपने शिक्षण क्षेत्र से जुड़े वातावरण में सामंजस्य स्थापित कर सकेंगे।

4.3 शैक्षणिक व्यवस्था में मानवीय मूल्यों का महत्व:

किसी भी शिक्षक द्वारा दी जा रही शिक्षा की गुणवत्ता का शिक्षण वातावरण के मूल्यों से गहरा सम्बन्ध होता है। एक आस्ट्रेलियाई अध्ययन में यह पाया गया की जब विद्यार्थियों को उनके पसंदीदा शिक्षक के गुणों को नामांकित करने को कहा गया तो उन्होंने शिक्षकों में सहृदयता तथा विश्वास को सर्वोपरि माना। देखा जाये तो किसी भी कुशल शिक्षक के लिए स्पष्ट अनुदेश और कुशल अध्यापन शैली ही काफी होनी चाहिए, परन्तु वह प्रभावी तभी होगा जब वह विद्यार्थियों द्वारा विश्वास करने योग्य, संवेदनशील तथा उनके संपूर्ण विकास के प्रति समर्पित होगा।

किसी भी राष्ट्र का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास उस देश की शिक्षा पर निर्भर करता है। आधुनिक युग में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उस शिक्षक को पाठ-प्रदर्शक के रूप में देखा जाता है जो विद्यार्थियों को मात्र किताबी ज्ञान ही नहीं देता बल्कि जीवन जीने की कला भी सिखाता है। विद्यार्थी शिक्षक को ही आदर्श मानते हैं तथा उसी के दिखाए पथ पर चलते हैं। ऐसे में एक शिक्षक का दायित्व और भी बढ़ जाता है। सरकार द्वारा समय-समय पर लायी गयीं शैक्षिक नीतियों के

सफलतापूर्वक निष्पादन में यदि कोई सबसे मजबूत कड़ी है, तो वह है एक शिक्षक। शिक्षक द्वारा दी गयी शिक्षा ही शिक्षार्थी के सर्वांगीण विकास का मूल आधार है। शिक्षकों द्वारा प्रारंभ से ही पाठ्यक्रम के साथ ही साथ जीवन मूल्यों की शिक्षा भी दी जाती है। शिक्षा हमें ज्ञान, विनम्रता, व्यवहार कुशलता और योग्यता प्रदान करती है। अध्यापक को ऐसा जीवन जीना चाहिए जो उसे छात्रों के लिए एक योग्य उदाहरण बना दे। NCFTE (National Curriculum Framework for Teacher Education), 2009 ने भी शिक्षक शिक्षा के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए, शिक्षकों की भूमिका, उनके दर्शन, उद्देश्य तथा धारणाओं को महत्व दिया है। NCFTE, 2009 द्वारा शिक्षक से अपेक्षित गुणों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है।

4.3.1. मूल्य एवं व्यवहार: आवश्यक वातावरण का निर्माण:

अधिगम के वातावरण में जो सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व है और जिसके अभाव में विद्यार्थियों का विकास नहीं किया जा सकता, वह तत्व अमूर्त और अदृश्य है। यह तत्व मूल्यों, व्यवहारों और शैक्षिक कार्यों से बनता है जो एक शिक्षक के व्यक्तित्व में प्रतिबिंबित होता है। शिक्षक ही विद्यार्थियों को कक्षा में लोकतांत्रिक जीवन शैली, समानता, संवैधानिक मूल्य , धर्मनिरपेक्षता, न्याय, तथा शांति जैसे मूल्यों को आत्मसात कर विद्यार्थियों में इनको बढ़ावा दे सकता है।

4.3.2. सभी विद्यार्थियों को समान अवसर:

हर विद्यार्थी को RTE (Right To Education), 2009 के तहत शिक्षा का समान अधिकार है। ऐसे में शिक्षक को जाति, धर्म, संप्रदाय, वर्ण, लिंग या पृष्ठभूमि के आधार पर विद्यार्थियों में भेद-भाव नहीं करना चाहिए। ऐसे में यहाँ समावेशी शिक्षा का उल्लेख भी किया जा सकता है जिसके अंतर्गत अध्यापक को हर छात्र को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने का निर्देश दिया जाता है। छात्रों की पृष्ठभूमि, जाति, धर्म, भाषा, तथा शारीरिक अथवा मानसिक विकलांगता से उनकी शिक्षा में रुकावट नहीं आनी चाहिए। समावेशी शिक्षा एक दार्शनिक स्थिति है जिसका मुख्य उद्देश्य एक ऐसे एकीकृत विशेष विद्यालय की स्थापना करना है जो विशेष क्षमता या विविध सामाजिक पृष्ठभूमि या फिर शारीरिक तथा मानसिक रूप से विकलांग छात्रों को सीखने के समान अवसर प्रदान कर सके। इसके द्वारा विभिन्न समूहों और समुदायों की जटिलताओं को समझ कर, उनकी समस्याओं के निवारण को सुनिश्चित कर, उन्हें संस्थागत सुविधाएँ प्रदान करने का बराबर अवसर दिया जाता है।

सामान्य रूप से हमारे यहाँ के विद्यालयों में दो प्रकार के बहिष्कार देखे जा सकते हैं। पहला है विकलांग छात्रों के प्रति शिक्षकों का उदासीन व्यवहार । ऐसे विद्यार्थी शिक्षक की अपर्याप्त क्षमता तथा असंवेदनशीलता के कारण विद्यालय छोड़ने को मजबूर हो जाते हैं। ये विद्यार्थी भी समाज और देश के विकास के लिए उतने ही आवश्यक हैं जितने कि अन्य विद्यार्थी जिन्हें हम सामान्य की श्रेणी में रखते हैं। ऐसे में शिक्षक को उनकी ज़रूरतों को समझना चाहिए तथा उनके अधिगम को सरल बनाने के लिए नवीनतम विधियों का उपयोग करना चाहिए। दूसरा है जाति और लिंग के आधार पर शैक्षिक भेदभाव।

वह छात्र जो अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अल्पसंख्यक समुदाय के हों, उनका समायोजन भी अति आवश्यक है। शिक्षकों में ऐसे छात्रों के प्रति संवेदना तथा वात्सल्य का भाव होना चाहिए। सभी बच्चों को समान अवसर प्रदान करने पर जोर दिया जाना चाहिए। शिक्षकों को विभिन्न छात्रों की ज़रूरतों के अनुसार पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, विद्यालय की संरचना में सुधार लाना चाहिए। PWD(Persons With Disability) Act, 2005 के पारित होने के कारण, विकलांग बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाती है। शिक्षकों को लड़कियों की शिक्षा तथा उसमें आने वाली बाधाओं के विषय में भी अवगत होना चाहिए। जिससे धीरे-धीरे विद्यालय में उनकी भागीदारी बढ़ाई जा सके।

4.3.3 निष्पक्ष तथा दीर्घकालिक विकास के परिपेक्ष्य में:

भविष्य के नागरिकों के बेहतर निर्माण के लिए आज ही उन्हें समानता का पाठ पढ़ना होगा। इसके लिए शिक्षक को कक्षा में धर्म निरपेक्षता, सभी के लिए सम्मान तथा लिंग समानता का पाठ पढ़ाना होगा। ये तभी सम्भव है जब शिक्षक इन मानवीय मूल्यों को आत्मसात कर इनका सम्मान भी करेगा। वर्तमान समय में जब वहनीय विकास पर बल दिया जा रहा है तब छात्रों को प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण भी अध्यापक ही सीखा सकता है।

वर्तमान में बच्चों के भीतर हिंसा की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, जो कि समाज में बढ़ते तनाव का संकेत है। शिक्षा, शांति तथा सम्मान जैसे मूल्यों को बढ़ावा देने का एक शक्तिशाली माध्यम है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा (National Curriculum Framework), 2005 में सुझाए गये पाठ्यक्रम और पाठ इस दायित्व का भली-भाँति निर्वाह कर रहें हैं। विद्यार्थियों में इन गुणों का विकास करने के लिए शिक्षक को ऐसे मुद्दों की समझ होना आवश्यक है। इसके साथ ही उनके शिक्षण तथा आचार में ये गुण प्रतिबिंबित होने चाहिए तभी विद्यार्थी इन गुणों का अनुकरण और आत्मसात कर पाएंगे।

4.3.4. सामुदायिक ज्ञान के विकास में शिक्षा की भूमिका

बच्चों में किसी भी धारणा के विकास के लिए औपचारिक ज्ञान का वास्तविक ज्ञान से जुड़ा होना बहुत ज़रूरी है। विद्यालय में सीखे गये ज्ञान को वह अपनी जीवन शैली में कैसे उपयोग कर सकते हैं इसमें शिक्षक का बहुत बड़ा योगदान होता है। इससे शिक्षा का उपयोगिता और अधिगम की गुणवत्ता बढ़ जाती है। इससे शिक्षक को सजग होकर ऐसे एक पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए जिसमें समुदाय के अनुभवों को भी सम्मिलित किया जा सके। इससे बच्चों के मन में समुदाय के प्रति सम्मान और एकजुटता की भावना बढ़ेगी।

अभ्यास प्रश्न:

1. समावेशी शिक्षा की परिभाषा लिखिए।
2. शिक्षा का अधिकार (Right to Education) से आप क्या समझते हैं?

4.4. शिक्षण क्षेत्र में व्यावसायिक नीतियाँ: सैद्धांतिक तथा व्यवहारिक पक्ष:

शिक्षण अपने आप में एक महान कार्य है और शिक्षक को भारत में भगवान समान समझा जाता है। अन्य व्यवसायों की तरह शिक्षण क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए भी एक ऐसे व्यावसायिक आचार संहिता का निर्माण आवश्यक समझा गया, जिससे इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र की गरिमा व अखंडता सुनिश्चित की जा सके। बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009, के तहत शिक्षकों के दायित्व का क्षेत्र और भी बढ़ गया है क्योंकि बिना किसी भेदभाव या पृथक्करण के अब हर वर्ग के बच्चे का समावेशन किया जाना है और ऐसे में सभी विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए शिक्षक को विशेष तैयारी करनी पड़ेगी तथा उन्हें विद्यालय लाकर शिक्षित करना पड़ेगा। ऐसे में शिक्षक को और भी कर्तव्यनिष्ठ होना होगा तथा अपने दायित्वों का सुचारु रूप से पालन करना होगा।

1.4.1. शिक्षण क्षेत्र में व्यावसायिक नीतियों की आवश्यकता के कारण:

1. शिक्षक, छात्र के लिए एक मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है। अतः उसे एक आदर्श स्थापित करना अतिआवश्यक है।
2. शिक्षक अगली पीढ़ी के लिए पथ प्रदर्शक होता है।
3. भारत में शिक्षा नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप होती है। अतः शिक्षक को इन मूल्यों का भली -भाँति ज्ञान होना चाहिए।
4. नए मूल्यों तथा सांस्कृतिक विरासत के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए।
5. शिक्षकों की धारणा में हो रहे बदलाव को देखते हुए उनसे अपेक्षित मूल्यों तथा नीतियों के विषय में उन्हें बताना होगा।
6. सामाजिक स्तर पर शिक्षक के सम्मान तथा मान्यता में वृद्धि के लिए।
7. शिक्षक से अपेक्षित भूमिकाओं तथा दायित्वों को सुस्पष्ट करने के लिए।

1.4.2. शिक्षण क्षेत्र से जुड़े मूल्यों तथा व्यावसायिक नीतियों के बदलते प्रतिमान (Paradigm Shift)।

1. अध्यापन के प्रति शिक्षकों की बदलती अवधारणा के कारणवश अब शिक्षण धनार्जन का माध्यम-मात्र बन कर रह गया है।
2. शिक्षण क्षेत्र में मूल्यों, दायित्वों तथा प्रतिबद्धता के प्रति कुछ शिक्षकों का रवैया प्रायः उदासीन है।
3. मांग और आपूर्ति के बीच का अनुपात अधिकतर सामान नहीं है।
4. शिक्षा अब व्यवसायीकरण तथा लाभ का पर्यायवाची मात्र बन कर रह गयी है।
5. शिक्षण क्षेत्र में सेवा भाव की जगह अब अस्पष्ट भूमिकाओं ने ले ली है।

6. शिक्षक, शिक्षण के अलावा दूसरे व्यवसायों की तरफ अधिक आकर्षित हो रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न:

3. शिक्षण क्षेत्र में व्यावसायिक नीतियों की आवश्यकता के कारणों पर प्रकाश डालिए।
4. बच्चों के लिए निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम किस साल पारित किया गया था ?

4.5 NCTE द्वारा शिक्षण क्षेत्र से जुड़ी व्यावसायिक नीतियों के सिद्धांत:

शिक्षकों के लिए व्यावसायिक नीतियों की अनिवार्यता को देखते हुए NCTE (National Commission for Teacher Education) की एक चार सदस्यीय समिति ने विद्यालयों में शिक्षण करने हेतु शिक्षकों के लिए 23 नीतियों का निर्माण किया है। नैतिकता की इन नीतियों को पालन करने हेतु हर शिक्षक को शपथ दिलाई जाएगी। जिससे शिक्षण क्षेत्र की गरिमा में वृद्धि होगी। इन नीतियों को तीन भागों में बांटा गया है। इसमें शिक्षक का छात्रों, उनके अभिभावकों, समाज तथा अन्य शिक्षकों के प्रति कर्तव्यों का बिन्दु वार उल्लेख किया गया है। विद्यालय के शिक्षकों को निर्देश और मार्गदर्शन प्रदान कर उनकी गरिमा को बढ़ाने का प्रयास वर्तमान व्यावसायिक आचार संहिता द्वारा किया जा रहा है। यह व्यावसायिक नीतियाँ निम्नलिखित हैं।

4.5.1 शिक्षकों का विद्यार्थियों के प्रति दायित्व: शिक्षकों के विद्यार्थियों के प्रति दायित्वों में नौ दायित्व आते हैं जो निम्नलिखित हैं।

i. **सभी छात्रों के प्रति प्यार और स्नेह भरा व्यवहार-** शिक्षकों द्वारा छात्रों के प्रति प्रेम व स्नेह भरा व्यवहार न सिर्फ उनकी कुछ सीखने की इच्छा को जागृत करता है अपितु उनके अधिगम को भी और प्रभावी बनाता है। छात्रों की उपलब्धि तथा परीक्षा में उनके द्वारा अर्जित अंको को आधार मानकर शिक्षक को कभी भी उनके प्रति स्नेहपूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए। बल्कि हर छात्र पर समान रूप से ध्यान देना चाहिए। परीक्षा में अच्छा प्रदर्शन न करने वाले छात्र कई बार शिक्षक के उपालंभ का शिकार होते हैं। एक कुशल शिक्षक को इस दुर्गुण से बचना चाहिए और उन पर भी समान ध्यान देना चाहिए। किसी भी छात्र की धार्मिक या जातीय सम्बद्धता अथवा उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि कभी भी उसके प्रति अत्यधिक स्नेह या फिर घृणा का कारण नहीं बनना चाहिए। गुरु सबके लिए समान और सब गुरु के लिए समान होने चाहिए। विद्यार्थियों तथा शिक्षक के बीच अच्छे सम्बन्धों के लिए शिक्षक को मानवीय मूल्यों का ध्यान रखना चाहिए ताकि विद्यार्थी उससे अपनी मुश्किलें बता सकें। शिक्षक का कर्तव्य है की वह छात्रों में विश्वास, उत्साह तथा आशा का संचार करे न की डर और निराशा का। इस उपलक्ष्य में हर

शिक्षक का अपना एक दृष्टिकोण होता है जिसे अपना कर वह अपनी व्यवहार शैली को छात्रों के अनुकूल बना सकता है।

ii. **सभी विद्यार्थियों के प्रति निष्पक्षता तथा समानता का व्यवहार-** विद्यालय वह स्थान होता है जहाँ किसी भी छात्र को सामाजिक न्याय तथा समानता का पाठ पढ़ाया जाता है । लोकतान्त्रिक सिद्धांतों , सहिष्णुता तथा सामाजिक समानता जैसे गुणों को आत्मसात कर हर शिक्षक इन मूल्यों को छात्रों को सीखने के लिए एक बेहतर वातावरण तैयार कर सकता है। यदि अध्यापक स्वयं ही छात्रों के धर्म, जाति, लिंग, आर्थिक स्थिति, भाषा या जन्म स्थान के आधार पर उनमें भेद-भाव करता है तो कक्षा में कभी भी समानता का वातावरण नहीं बन पायेगा।

iii. **विद्यार्थियों के शारीरिक, सामाजिक, बौद्धिक, भावनात्मक और नैतिक विकास के लिए सदैव प्रयासरत रहना-** बचपन विकास की वह अवधि है जहाँ बच्चों की मानसिक तथा शारीरिक क्षमताएं पूरी तरह विकसित नहीं होती हैं बल्कि विकासक्रम में होती हैं । विद्यालय ही एकमात्र वह स्थान हैं जहाँ पर विद्यार्थियों की सभी क्षमताओं के विकास के लिए प्रयास किया जा सकता है। परन्तु यह चिंता का विषय है कि इस समय अधिकतर विद्यालयों में बस याद करने पर जोर दिया जाता है जो कि सर्वथा गलत और हानिकारक है । शिक्षक को पाठ्यक्रम का विस्तार कुछ इस प्रकार करना चाहिए जिससे बालक बौद्धिक, सामाजिक, भावनात्मक तथा नैतिक विकास के साथ-साथ शारीरिक विकास भी हो । छात्रों के लिए विभिन्न प्रकार की गतिविधियों को पाठ्यक्रम में जगह देनी चाहिए, जिससे उनका शारीरिक विकास भी हो । सामाजिक मूल्यों को सीखने के लिए भी कई प्रकार की गतिविधियों जैसे वाद-विवाद, निबंध लेखन , नाटक इत्यादि का आयोजन होना चाहिए।

iv. **विद्यालय जीवन के सभी पहलुओं में बच्चे की बुनियादी मानव गरिमा का आदर करना-** हर बच्चे का अधिकार एवं सम्मान सर्वोपरि है क्योंकि वह भी एक मनुष्य है और इसी लोकतांत्रिक समाज का महत्त्वपूर्ण सदस्य है जिसमें हम सब रहते हैं। कई बार देखा गया है की शिक्षक छात्रों को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने से अधिकतर मना करते हैं। यह एक छात्र के अधिकार का उल्लंघन है। शिक्षक द्वारा की गयी अपमानजनक टिप्पणी बच्चे के आत्मसम्मान को प्रभावित करती है, जिससे उसके अधिगम पर असर पड़ता है। बच्चों की आवाज़ और अनुभवों को अकसर कक्षा में अभिव्यक्ति नहीं मिलती । इसके निवारण के लिए शिक्षक को विद्यालय की सभी गतिविधियों में छात्र-सहभागिता को प्रोत्साहित करना चाहिए। शिक्षकों को यूनाइटेड नेशंस (U.N.) द्वारा बाल अधिकार पर दिए गये घोषणा पत्र और राष्ट्रीय बाल अधिकार रिपोर्ट को अच्छी तरह पढ़ना और समझना चाहिए जिससे वे सुनिश्चित करें की किसी भी बालक के अधिकारों का हनन न हो ।

v. **योजनाबद्ध और व्यवस्थित तरीके से बच्चे की क्षमता तथा प्रतिभा का विकास करना-** किसी भी शिक्षक की मुख्य जिम्मेदारी छात्र की क्षमता और प्रतिभा को स्वीकार करना और उन्हें निखारने के लिए योजनाबद्ध और व्यवस्थित प्रयास करना है। हर शिक्षक को खेल-खेल में छात्रों

की कई प्रतिभाओं जैसे की संगीत, नृत्य इत्यादि को पहचानना चाहिए। आम तौर पर छात्रों को शैक्षिक उपलब्धि पर ही प्रशंसा दी जाती है, जबकि उनकी रचनात्मकता को पहचान नहीं मिल पाती। इसलिए शिक्षक की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। वह विद्यार्थियों के अन्दर छिपे विभिन्न कलाओं को पहचान कर उन्हें आगे बढ़ाने हेतु तदनुसार पाठ्यक्रम का नियोजन कर सकते हैं। परन्तु यह कार्य थोड़ा कठिन हो सकता है क्योंकि इसके लिए शिक्षक को छात्र के सहपाठियों एवं अन्य शिक्षकों के साथ मिल कर साझा प्रयास करना होगा। और फिर हर बच्चे की प्रतिभा को पहचान कर उसे पाठ्यक्रम में एकीकृत करना होगा।

भारत के संविधान में परिभाषित मूल्यों के अनुरूप पाठ्यक्रम का गठन- भारत के संविधान में निहित मूल्यों के लिए शिक्षक एक मार्गदर्शक है। संवैधानिक मूल्य जैसे लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समानता, न्याय और स्वतंत्रता विद्यालय में पाठ्यक्रम या अन्य गतिविधियों द्वारा छात्रों को सिखाया जा सकता है। ऐसे में शिक्षकों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 51 (अ) के अनुसार दिए गये मूलभूत कर्तव्यों के विषय में विद्यार्थियों को अवगत करना चाहिए और उदाहरण भी देना चाहिए।

छात्रों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुकूल अपने अनुदेश में परिवर्तन करना- एक कुशल अध्यापक का शिक्षण छात्र केन्द्रित होना चाहिए। उसे इस बात पर विचार करना चाहिए की हर शिक्षार्थी के विविध अनुभव और आवश्यकताएं हो सकती हैं। यह तभी सम्भव है जब हर शिक्षक अपनी इस भूमिका के विषय में जागरूक हो और अनुदेश की नवीनतम विधियों के विषय में शोध कर इसे अपने अध्यापन में शामिल करें। कक्षा में अन्वेषण, प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद, निबंध लेखन इत्यादि द्वारा छात्रों की सक्रिय सहभागिता को सुनिश्चित किया जा सकता है।

छात्रों से संबंधित सूचनाओं की गोपनीयता को बनाए रखना तथा किसी अधिकृत व्यक्ति तक ही उचित समय पर इस सूचना को प्रेषित करना- अध्यापक न सिर्फ छात्र को ज्ञान देता है बल्कि उसे छात्र की संस्कृति और समुदाय और उसके परिवार के विषय में भी मालूम होता है। शिक्षक कई बार एक सलाहकार की तरह भी काम करता है इसीलिए उसके पास छात्र के व्यक्तिगत जानकारी हो सकती है। ऐसे में छात्र का विश्वास और सम्मान उसे प्राप्त होता है। इसीलिए ये अध्यापक की नैतिक जिम्मेदारी है की वह इस सूचना की गोपनीयता को बनाये रखे जो उसे छात्र ने बताये हैं या फिर उसने विभिन्न स्रोतों से इकट्ठे किये हैं। ऐसी किसी भी जानकारी को साझा करने से पहले बहुत सूझ-बूझ का इस्तेमाल करना चाहिए। ज़रूरत पड़ने पर माता-पिता या किसी अधिकृत व्यक्ति तक ही यह सूचना संप्रेषित की जानी चाहिए। सार्वजनिक रूप से ऐसी सूचनाओं का फैलना छात्र के विकास को क्षति पहुंचा सकता है।

छात्र को शारीरिक आघात, यौन उत्पीड़न, और मानसिक एवं भावनात्मक उत्पीड़न न देना जिससे उसके अन्दर भय, चिंता या अवसाद उत्पन्न हो- शिक्षक का कर्तव्य है की वह हर छात्र को यथासंभव शारीरिक या मानसिक हिंसा, यौन उत्पीड़न, तथा किसी भी प्रकार के शोषण से बचाए। अपने व्यवहार को सौम्य एवं संवेदनशील रखे जिससे छात्र अपने साथ होने वाले किसी भी प्रकार के दुराचार को उससे कह सकें। शिक्षण समुदाय को बाल अधिकारों के उल्लंघन से बचना चाहिए। इसकी दृष्टि से

NCPCR (National Council for Protection of Child Rights) के दिशानिर्देश मार्गदर्शन कर सकते हैं। छात्र को हर प्रकार के शारीरिक दंड देने से बचना चाहिए। इसके अंतर्गत न सिर्फ मारना बल्कि उँगलियों पर मारना , बच्चों को दौड़ाना, लम्बे समय तक खड़ा रखना, थप्पड़ मारना, कमरे में बंद करना भी अब आते हैं। शारीरिक चोटें तो फिर भी दिखाई देती हैं परन्तु मानसिक चोट छिपी ही रहती हैं। इससे बच्चा अवसाद ग्रस्त हो सकता है। शिक्षक को छात्रों में परिलक्षित होने वाले संकेतों को पहचान उसके निवारण हेतु उपयुक्त कदम लेने चाहिए। यौन उत्पीड़न बच्चों के दिमाग पर गहरे, लंबे समय तक चलने वाले निशान भी छोड़ देते हैं। एक शिक्षक के रूप में यौन दुर्व्यवहार से जुड़े किसी भी कार्य को रोकना चाहिए। इस तरह के व्यवहार में कोई भी भागीदारी शिक्षक की प्रतिष्ठा को न सिर्फ ध्वस्त करती है बल्कि उसे दंड का पात्र भी बनाती है। ऐसे मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गये दिशानिर्देशों से शिक्षक को अवगत होना चाहिए।

एक आदर्श शिक्षक से अपेक्षित गुणों का पालन करना- प्राचीन युग में 'गुरु' शब्द एक उत्कृष्ट व्यक्ति के लिए ही उपयोग किया जाता था। भारतीय संदर्भ में शिक्षक को देवता तुल्य माना गया है। यहाँ तक की शिक्षा सम्बंधित राष्ट्रीय नीति NPE (National Policy of Education 1986/92) में शिक्षक के सम्मानित ओहदे का कुछ इस तरह उल्लेख किया गया है " कोई भी व्यक्ति इसके ऊपर नहीं उठ सकता "। ऐसे में शिक्षक को अपनी वेश-भूषा, भाषा शैली तथा व्यक्तित्व को आदर्श बनाना चाहिए। उसके आचरण में किसी भी प्रकार का दोष नहीं होना चाहिए क्योंकि बच्चे उदाहरण से ही सीखते हैं। उसे एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करना होगा जो बच्चों के दिमाग पर एक अमिट छाप छोड़ जाए।

4.5.2.माता-पिता, समुदाय और समाज के प्रति दायित्व:

i. **छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु अभिभावकों से सौहार्दपूर्ण तथा विश्वसनीय ताल-मेल करना-** कभी-कभी ऐसा हो सकता है की किसी समस्या के निदान के लिए छात्र के माता-पिता, शिक्षक से संपर्क करें। ऐसे में शिक्षक का यह दायित्व है की वह निष्पक्ष होकर इसका हल खोजे। निस्संदेह ऐसी परिस्थिति में अध्यापक का अभिभावकों के प्रति सौहार्दपूर्ण एवं निष्पक्ष व्यवहार, शिक्षक-छात्र संबंधों को प्रभावित कर सकता है। शैक्षिक प्रणाली में शिक्षक केंद्रीय भूमिका निभाता है। वह छात्र के माता-पिता व अपने सहयोगियों से सामंजस्य स्थापित कर उसके सर्वांगीण विकास पर बल दे सकता है। अधिकांश माता-पिता अपने बच्चे के विकास के बारे में अवगत होना चाहते हैं। इसके लिए वह शिक्षक से ही संपर्क करते हैं। ऐसे में शिक्षक को यह ध्यान रखना होगा की उनके वार्तालाप से बच्चे में एक सकारात्मक सोच पैदा हो तथा उसके आत्म-सम्मान का हनन न हो। शिक्षक तथा माता-पिता का योगदान छात्रों को सही राह पर ला सकता है।

ii. **ऐसे कृत्य या वचन से बचना चाहिये जो किसी छात्र, उसके माता-पिता अथवा संरक्षक के प्रति अपमानजनक हो-** शिक्षक को अन्य छात्रों के सामने किसी भी छात्र को अपमानित नहीं करना चाहिए। इससे उसमें कुंठा उत्पन्न हो सकती है। विभिन्न धर्मों, क्षेत्रों, जातियों,

विकलांगता श्रेणी आदि से संबंधित बच्चों के प्रति अपमानजनक टिप्पणी नहीं करनी चाहिए। सभी छात्र अलग-अलग पृष्ठभूमि से आते हैं। इस बात का आदर करना चाहिए और उनके प्रति संवेदनशील होना चाहिए। किसी एक छात्र के प्रति विशिष्ट झुकाव दूसरे छात्रों में भावनात्मक संघर्ष का कारण बन सकता है। एक बच्चे की उपलब्धि का दूसरे से तुलना नहीं करनी चाहिए। बच्चों को रुचिकर क्षेत्रों में अपने प्रदर्शन पर सुधार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। किसी भी बच्चे को उस क्षेत्र में आगे बढ़ने को मजबूर नहीं करना चाहिए जिसमें उसे अरुचि हो।

iii. **छात्रों में भारतीय संस्कृति के प्रति सम्मान को विकसित करने हेतु सदैव प्रयासरत रहना-** भारत कई संस्कृतियों, भाषाओं, धर्मों, और मान्यताओं की भूमि है। इन्हीं विभिन्न संस्कृतियों के बीच लंबे समय से सहयोग और मेल-मिलाप के परिणामस्वरूप एक समग्र देश का विकास हुआ है। किसी भी कक्षा में विभिन्न संस्कृति, धर्म तथा भाषा इत्यादि के छात्र होते हैं। हर संस्कृति के प्रति सम्मान तथा सहिष्णुता प्रत्येक शिक्षक का कर्तव्य है। पाठ्यक्रम में हर धर्म की सराहना की जानी चाहिए तथा विभिन्न संस्कृतियों के योगदान का उल्लेख भी होना चाहिए। जब अध्यापक स्वयं मानवता को सर्वोपरि मानेंगे तो छात्र अवश्य इस बात से प्रभावित होंगे। किसी भी धर्म के ऊपर निजी नकारात्मक टिप्पणी करने से बचना चाहिए। इस तरह हर छात्र को भारतवासी होने का गर्व होगा।

iv. **देशहित को सर्वोपरि मानते हुए, ऐसे सम्मेलनों तथा कार्यों में भाग नहीं लेना चाहिए जिससे किसी भी धार्मिक समुदाय या भाषा समूह के प्रति घृणा या शत्रुता का संचार हो-** कक्षा की बहुलवादी संस्कृति एक जटिल वास्तविकता है जिससे समस्याएं हो सकती हैं, जो छात्रों को विभिन्न समुदायों में विभाजित कर सकती हैं। शिक्षक एक है ऐसा माध्यम है जो सभी छात्रों में सहिष्णुता और सम्मान का संचार कर सकता है। वह भारतीय पहले और किसी अन्य समुदाय से सम्बंधित बाद में होता है और इसी धारणा को छात्रों को भी सिखा सकता है। शिक्षा के अलावा उसे विद्यालय के मंच का उपयोग किसी भी अन्य तरह के प्रचार-प्रसार हेतु कभी नहीं करना चाहिए। वर्तमान में चर्चा करते समय, देश में हो रहे सामाजिक और राजनीतिक संघर्ष में शिक्षक को निष्पक्ष होना चाहिए। ऐसी स्थिति में हमेशा एक संतुलित व उद्देश्यपूर्ण दृष्टिकोण बनाये रखना चाहिए।

4.5.3 शिक्षण व्यवसाय और सहकर्मियों के प्रति दायित्व

i. **अपने सतत व्यावसायिक विकास के लिए सदैव प्रयासरत रहना-** शिक्षण एक शाश्वत प्रक्रिया है। शिक्षण एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ नित नई खोज होती है। अपने छात्रों को नवीनतम विद्या प्रदान करने के लिए हर अध्यापक को निरन्तर सीखते रहना चाहिए। अख़बार, पत्रिकाओं, नई पुस्तकें, सहकर्मियों से चर्चा, सेमिनार, सम्मेलन में सहभागिता से शिक्षक लगातार कुछ नया सीख सकते हैं। अपने क्षेत्र में निपुणता प्राप्त करने के लिए शिक्षक INSET

कार्यक्रमों में सहभागिता बढ़ा सकते हैं अथवा दूरस्थ माध्यम से आगे पढ़, पदोन्नति पा सकते हैं । अध्यापक को इन्टरनेट और कंप्यूटर का संपूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

ii. **एक ऐसा वातावरण निर्मित करना जो सहयोगियों तथा हित धारकों के बीच उद्देश्यपूर्ण सहयोग तथा संवाद का माध्यम बन सके-** किसी भी शैक्षिक संस्था की सफलता में उसके हितधारकों जैसे अध्यापक, अभिभावक, छात्र इत्यादि का हाथ होता है । शिक्षक को एक योजनाबद्ध तरीके से संस्था के उत्थान के लिए काम करना चाहिए। यह सहयोग परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों के निष्पादन में हो सकता है । शिक्षकों के मध्य चर्चा होनी चाहिए जिससे छात्र हित में फैसले लिए जाने चाहिए । संस्था से जुड़ी समस्याओं का एक सामूहिक समाधान निकलना चाहिए । कक्षा से सम्बंधित समस्या जैसे पाठ्यक्रम नियोजन, कक्षा प्रबंधन , छात्र व्यवहार इत्यादि का हल सब शिक्षकों को मिल कर निकालना चाहिए। हर संस्थान में शिक्षकों की बैठक नियमित रूप से करनी चाहिए। संस्था की समस्याओं, कार्यक्रमों और योजनाओं में अभिभावकों की भी समान भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए।

iii. **अपने अध्यापक होने पर गौरवान्वित होना चाहिए तथा अन्य अध्यापकों के साथ आदर और गरिमापूर्ण व्यवहार करना-** एक शिक्षक को अपना आचरण गरिमापूर्ण रखना चाहिए और अपने चुने गये जीविकोपार्जन के माध्यम पर खुश होना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में शिक्षण करने पर पश्चाताप नहीं व्यक्त करना चाहिए । हर शिक्षक को सभी अध्यापकों के प्रति सम्मान तथा आदर का भाव रखना चाहिए। फिर वह प्राथमिक, माध्यमिक, कक्षाओं में पढ़ाते हों । किसी भी प्रकार की बैठक में हर शिक्षक के मत और विचारों का सम्मान किया जाना चाहिए । नए नियुक्त हुए शिक्षकों द्वारा व्यक्त विचारों को उचित महत्व दिया जाना चाहिए । वरिष्ठ अध्यापकों को ऐसी स्थिति में उनके अनुभव की कमी पर टिप्पणी से सदैव बचना ही चाहिए। किसी भी शिक्षक से उसकी उम्र, धर्म, जाती, राज्य के आधार पर भेद-भाव नहीं करना चाहिए। ईर्ष्या अथवा किसी और कारणवश कभी भी किसी सहयोगी अध्यापक की निंदा नहीं करनी चाहिए।

iv. **निजी ट्यूशन या किसी भी अन्य प्रकार की निजी शिक्षण गतिविधि से परहेज करना चाहिए-** निजी ट्यूशन हमेशा से ही तर्क का मुद्दा रहा है। इसके पक्ष में तर्क हैं और इसके विरुद्ध भी। जो पूर्णकालिक शिक्षकों के रूप में कार्यरत नहीं हैं, लेकिन पूर्णकालिक निजी ट्यूशन देते हैं, उन्हें भी शिक्षकों के लिए बनी नीतियों का पालन करना चाहिए । किसी भी पूर्ण कालिक नियमित शिक्षक का निजी ट्यूशन देने से उसकी कार्यदक्षता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । विद्यालय जाने से पहले या बाद में तीन-चार घंटा ट्यूशन लेने के कारण उसके समय का सदुपयोग नहीं होता। यह समय ऐसे शिक्षक को पढ़ने अथवा अपने पाठ की तैयारी में लगाना चाहिए। विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले छात्रों को ही घर पर ट्यूशन देने से कई नैतिक मूल्यों का उल्लंघन होता है । ऐसे विद्यार्थियों के प्रति शिक्षक का संवेदनशील होना अवश्यम्भावी है,

जिससे उनके मूल्यांकन में पक्षपात को नकारा नहीं जा सकता। इस तरह अन्य छात्रों के साथ अन्याय हो सकता है।

v. **किसी भी प्रकार के उपहार न लेना जिससे अध्यापन से जुड़े निर्णयों तथा कार्यों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े -** छात्रों तथा अभिभावकों से उपहार बिलकुल भी स्वीकार नहीं करने चाहिए। उपहार स्वीकार करने पर शिक्षक के निर्णय तथा कार्य प्रभावित हो सकते हैं। छात्रों द्वारा दिए गये फूल या कार्ड को मुसकुराते हुए स्वीकार किया जा सकता है। पर महंगे उपहार देकर यदि कोई छात्र मूल्यांकन को प्रभावित करना चाहे तो अध्यापक को तुरंत मना कर देना चाहिए। छात्रों के अभिभावकों से भी किसी प्रकार का लाभ नहीं लेना चाहिए।

vi. **सहयोगियों के खिलाफ झूठे तथा बेबुनियाद आरोप नहीं लगाना चाहिए अथवा केवल ठोस वजह से उच्च अधिकारियों के पास उनकी शिकायत लेकर जाना चाहिए-** विद्यालयों में जहाँ कई शिक्षक एक साथ हों वहां मतभेद होना स्वाभाविक है। किन्तु बिना किसी ठोस वजह या सबूत के किसी भी शिक्षक के खिलाफ उच्च अधिकारियों से शिकायत करना अवांछनीय है। परस्पर विरोधी गुट बना कर कुछ शिक्षक अन्य शिक्षकों पर आरोप-प्रत्यारोप में संलग्न होते हैं। इसका सर्वथा निषेध करना चाहिए। विद्यालय में यदि किसी भी छात्र के मानवीय अधिकारों का हनन हो रहा है तो शिक्षक को तुरंत इसकी खबर करनी चाहिए। परन्तु उसके पास इस बात का सबूत हो न कि सुनी- सुनाई बातों पर विश्वास करना चाहिए।

vii. **सहकर्मियों की अनुपस्थिति में उनके विषय में अपमानजनक चर्चा करने से बचना चाहिए-** किसी भी चर्चा में एक शिक्षक का अपने सहयोगियों से मतभेद हो सकता है। परन्तु इसकी अभिव्यक्ति विनम्रता से करना चाहिए। किसी भी शिक्षक की अनुपस्थिति में उसकी आलोचना या निंदा से सदैव बचना चाहिए। अन्य अध्यापकों के कपड़े, भाषा, जातीय व पृष्ठभूमि पर टिप्पणी नहीं करनी चाहिए। अभिभावकों एवं छात्रों की उपस्थिति में किसी भी शिक्षक की शिक्षण शैली की आलोचना नहीं करनी चाहिए।।

viii. **अपने सहयोगियों के शिक्षण क्षेत्र से जुड़े विचारों का सम्मान करना चाहिए-** किस भी द्वारा सुझाये गये विचारों को आँख बंद कर के स्वीकार नहीं करना चाहिए। उस पर अनुकरण करने से पहले गंभीर रूप से सोच समझ कर ही निर्णय लेना चाहिए। हर शिक्षक का अधिकार है की वह विद्यालय से सम्बंधित किसी भी समस्या पर अपने विचार खुल कर रख सके। उसके विचारों का सदैव सम्मान करना चाहिए न की साफ़ नकार देना चाहिए। बल्कि विनम्रता पूर्वक अपने विचारों को व्यक्त करते हुए उनके सुझाव की कमियों को बताना चाहिए। नवीन नियुक्त शिक्षकों को तभी ऐसी बैठकों में बोलने का उत्साह मिलेगा।

ix. **सहयोगियों से संबंधित सूचना की गोपनीयता बनाए रखना चाहिए तथा किसी अधिकृत व्यक्ति से ही उसके विषय में चर्चा करना चाहिए-** एक शिक्षक अपने सहयोगी शिक्षकों के जीवन और आचरण के बारे में बहुत सी बातें जानता है। ऐसी कुछ सूचनाएं गोपनीय प्रकृति की भी हो सकती हैं। शिक्षक व्यावसायिक नैतिक संहिता का उल्लंघन करेगा यदि वह प्राप्त

जानकारी को प्रचारित करने का चयन करता है। एक युवा शिक्षक अपने व्यक्तिगत , सामाजिक या व्यावसायिक जीवन में किसी प्रकार की समस्या का सामना करने पर यदि अपने से वरिष्ठ शिक्षक की सहायता मांगे और वह शिक्षक उसकी जानकारी को सबसे साझा करे तो वह भी अपने व्यवसाय से जुड़े नैतिक सिद्धांतों का उल्लंघन करेगा।

अभ्यास प्रश्न

5. इनके फुल फॉर्म लिखिए।
    - NCTE
    - NCPCR
    - RTE
    - NCF
    - NPE
6. अभिभावकों के प्रति शिक्षक के क्या दायित्व हैं ?
7. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में मूल कर्तव्यों का विवरण दिया गया है।
8. कक्षा में छात्र सहभागिता को बढ़ावा देने के लिए शिक्षक द्वारा क्या-क्या गतिविधियाँ करायी जा सकती हैं?

4.6 सारांश

शिक्षण दूसरे व्यवसायों को जन्म देता है। एक शिक्षक उस मोमबत्ती के समान है, जो खुद जल कर छात्रों को रौशनी देता है। अध्यापक को मूल्यों एवं नीतियों का पालन करना चाहिए क्योंकि विद्यार्थी उसको देख कर ही सीखते हैं। विद्यालय में अध्यापक न केवल मार्गदर्शक है बल्कि वह अभिभावक भी है। यदि उसका आचरण शिक्षक व्यवसाय के अनुरूप होगा तो छात्र अवश्य उसका सम्मान करेंगे तथा शिक्षण प्रणाली में उनका विश्वास भी दृढ़ होगा।

4.7 शब्दावली

निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक, 2009: निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा विधेयक, 2009 भारतीय संसद द्वारा सन् 2009 में पारित शिक्षा सम्बन्धी एक विधेयक है। इस विधेयक के पास होने से बच्चों को मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा का मौलिक अधिकारमिल गया है। संविधान के अनुच्छेद 45 में 6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिये अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी है तथा 86 वें संशोधन द्वारा 21 (क) में प्राथमिक शिक्षा को सब नागरिको का मूलाधिकार बना दिया गया है।

शिक्षा का अधिकार: शिक्षा का अधिकार निःशुल्क अवं अनिवार्य शिक्षा से सम्बंधित है। 2002 में, संविधान (86वाँ संशोधन) अधिनियम शिक्षा के अधिकार के माध्यम से एक मौलिक अधिकार के रूप में पहचाना जाने लगा. लेख 21A इसलिए सम्मिलित होना जिसमें कहा गया है कि, *"राज्य राज्य के रूप में इस तरीके से, विधि द्वारा, निर्धारित कर सकते में छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा* । इसके अनुसार संतोषजनक और एकसमान गुणवत्ता वाली पूर्णकालिक प्रांरभिक शिक्षा के लिए प्रत्येक बच्चे का अधिकार है। अनुच्छेद 21-क और शिक्षा का अधिकार अधिनियम 1 अप्रैल, 2010 को लागू हुआ।

4.8अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. समावेशी शिक्षा एक दार्शनिक स्थिति है जिसका मुख्य उद्देश्य एक ऐसे एकीकृत विशेष विद्यालय की स्थापना करना है जो विशेष क्षमता या विविध सामाजिक पृष्ठभूमि या फिर शारीरिक तथा मानसिक रूप से विकलांग छात्रों को सीखने के सामान अवसर प्रदान कर सके।इसके द्वारा ऐसे समुदायों की जटिलताओं कोसमझ कर ,उनकी समस्याओं के निवारण को सुनिश्चित कर, उन्हें संस्थागत सुविधाएँ प्रदान करने का बराबर अवसर दिया जाता है।
2. हर विद्यार्थी को Right to Education (RTE), 2009 के तहत शिक्षा का समान अधिकार है।
3. शिक्षण क्षेत्र में व्यावसायिक नीतियों की आवश्यकता के प्रमुख कारण।

   1. शिक्षक, छात्र के लिए एक मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है। अतः उसका एक

   आदर्श स्थापित करना अतिआवश्यक है।

   2. शिक्षक अगली पीढ़ी के लिए पथ प्रदर्शक होता है।

   3. भारत में शिक्षा नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप होती है। अतः शिक्षक को इन मूल्यों का भली -भाँति ज्ञान होना चाहिए।

   4. नए मूल्यों तथा सांस्कृतिक विरासत के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए।

   5. शिक्षकों की धारणा में हो रहे बदलाव को देखते हुए उनसे अपेक्षित मूल्यों तथा नीतियों के विषय में उन्हें बताना होगा।

   6. सामाजिक स्तर पर शिक्षक के सम्मान तथा मान्यता में वृद्धि के लिए।

   7. शिक्षक से अपेक्षित भूमिकाओं तथा दायित्वों को सुस्पष्ट करने के लिए।
4. 2009
5. इनके फुल फॉर्म हैं।

   NCTE : National Commission for Teacher Education

   NCPCR: National Commission for Protection of Child Rights

   RTE: Right To Education

   NCF: National Curriculum Framework

NPE: National Policy of Education

6. यह कर्तव्य निम्नलिखित हैं।

- छात्रों के सर्वांगीण विकास हेतु अभिभावकों से सौहार्दपूर्ण तथा विश्वसनीय तालमेल - करना।
- ऐसे कृत्य या वचन से बचना चाहिये जो किसी छात्र के माता-पिता अथवा संरक्षक के प्रति अपमानजनक हो।
- छात्रों के विकास के विषय में समयसमय- पर अभिभावकों को अवगत करना।

7. अनुच्छेद (51 A)
8. वाद-विवाद प्रतियोगिता, निबंध लेखन, नाटक मंचन ,प्रश्नोत्तर इत्यादि।

4.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. NCTE (2010); *Draft Code of Professional Ethics for School Teachers*, New Delhi
2. NCTE (2009); *National curriculum framework for teacher education*, New Delhi

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. शैक्षणिक व्यवस्था में मानवीय मूल्यों के महत्व की समीक्षा कीजिये।
2. NCTE द्वारा दी गयी नीतियों में अध्यापक का विद्यार्थियों के प्रति कर्तव्यों का वर्णन कीजिये।
3. शिक्षक का अभिभावकों तथा अपने सहयोगियों के प्रति दायित्वों का विस्तारपूर्वक उल्लेख कीजिये।

इकाई 5 - छात्रों की सुखावद स्थिति में सुविधा प्रदाता तथा सहयोगी के रूप में शिक्षक की भूमिका को समझना

Understanding the Role of Teacher as Facilitator and Partner in Well-being among Learners

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 सुविधा प्रदाता तथा सहयोगी के रूप में शिक्षक की भूमिका : एक सैद्धांतिक रूपरेखा
5.3.1 सुविधा प्रदाता तथा शिक्षक में मूलभूत अंतर
5.3.2 सुविधा प्रदाता बनने हेतु शिक्षक के द्वारा किये जाने वाले महत्वपूर्ण प्रयास
5.4 छात्र सुखावद स्थिति (Student Well-Being) की परिभाषा तथा उसके घटक
5.5 छात्र सुखावद स्थिति के महत्वपूर्ण घटक
5.5.1 शारीरिक कल्याण
5.5.2 संज्ञानात्मक कल्याण
5.5.3 सामाजिक कल्याण
5.5.4 मानसिक कल्याण
5.5.5 आध्यात्मिक कल्याण
5.6 छात्रों में सुखावद स्थिति को लाने हेतु अध्यापकों का सहयोग करने वाली गतिविधियाँ
5.6.1 छात्र कल्याण एवं सुखावद स्थिति का मूलभूत ज्ञान और समझ
5.6.2 अधिगम का वातावरण
5.6.3 छात्रों में अपनेपन की भावना का विकास
5.6.4 छात्रों में नेतृत्व तथा आत्मविश्वास का विकास
5.6.5. माता-पिता तथा समुदाय का सहयोग
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.11 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

शिक्षा को छात्रों के स्वास्थ्य तथा उनके कल्याण से जोड़ा जाता है तथा उसका इन दोनों ही में महत्वपूर्ण योगदान माना गया है। विद्यालय का वातावरण निश्चित रूप से छात्र अधिगम तथा उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। तात्पर्य यह कि कोई भी छात्र कैसा नागरिक बनेगा यह उसकी शिक्षा पर भी निर्भर करता है। कई शोध इस विषय के साक्षी हैं कि विद्यार्थियों के विद्यालय में अनुभव उनके सामाजिक, भावनात्मक, व्यवहारिक तथा शारीरिक विकास की नींव रखते हैं। छात्रों की सुखावद स्थिति तथा उनके विद्यालय में हुए अनुभवों के बीच बड़ा गहरा सम्बन्ध होता है परन्तु फिर भी इसकी बहुत अपर्याप्त समझ शिक्षकों के बीच पायी जाती है। National Curriculum Framework for Teacher Education, 2009(NCFTE) में स्पष्ट किया गया है कि शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है छात्रों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों जैसे शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक का संपूर्ण विकास करना। इन सभी के बीच एक सामंजस्य ही छात्र को सुखावद स्थिति प्रदान करता है जिससे उसके संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण हो सकता है। हाल के वर्षों में छात्रों के कल्याण को मापने तथा उसके आकलन पर महत्व दिया जाने लगा है। इसका मुख्य कारण शिक्षा की सार्वजनिक नीति में बदलाव तथा शिक्षकों की जवाबदेही में वृद्धि होना है। छात्र कल्याण के मापन से विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा अर्जित परिणामों का भी आकलन हो सकता है। शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि जो छात्र सहज सुखावद स्थिति का अनुभव करते हैं उनका अधिगम तथा विकास भी प्रभावी होते हैं। वह अनुदेश के विभिन्न विधियों को आत्मसात करते है। उनका स्वास्थ्य तथा सामाजिक व्यवहार भी मानदंडों के अनुसार होता है। वयस्क होकर एक सामाजिक तथा राष्ट्र के उत्तरदायी नागरिक के रूप में विकसित होने की उनकी संभावनाएं अधिक होती हैं। प्रस्तुत पाठ इसी विषय से सम्बन्धित है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी

1. सुविधा प्रदाता तथा सहयोगी के रूप में शिक्षक की भूमिका की चर्चा कर सकेंगे।
2. सुविधा प्रदाता बनने हेतु शिक्षक द्वारा किए जाने वाले प्रयासों को चिह्नित कर सकेंगे।
3. छात्रों की सुखावद स्थिति को परिभाषित कर सकेंगे।
4. छात्रों की सुखावद स्थिति के घटकों का वर्णन कर सकेंगे।
5. शिक्षक द्वारा किये जाने वाली उन गतिविधियों का वर्णन कर सकेंगे जिनसे छात्रों की सुखावद स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव पड़े।

5.3 सुविधाप्रदाता तथा सहयोगी के रूप में शिक्षक की भूमिका : एक सैद्धांतिक रूपरेखा

यहाँ सुविधाप्रदाता से आशय उस व्यक्ति से है जो किसी कार्य को करने में सहायता प्रदान कर उसे सुगम बनाये । सुविधाप्रदाता लक्ष्य का निर्णय नहीं करता अपितु वह उस निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने में उस समूह की मदद करता है। वह किसी भी कार्य को करने की प्रक्रिया तय करने में समूह की सहायता करता है न कि स्वयं कार्य करता है। सुविधाप्रदाता के रूप में एक शिक्षक का महत्वपूर्ण कार्य है कि वह किसी भी लक्ष्य तक पहुँचने की प्रक्रिया निर्धारित करे ताकि छात्रों का उस तक पहुँचना सुगम बन सके। इस कार्य को सरलीकरण भी कह सकते हैं। देखा जाये तो सीखने के चार घटक हैं जो एक दूसरे के पूरक भी होते हैं। यह हैं; अनुभव, कल्पना, विचार और व्यवहार। छात्र अनुभव को उनके सीखने की नींव माना जा सकता है । इसलिए शिक्षक द्वारा प्रस्तुत सैद्धांतिक ज्ञान को विद्यार्थियों का अपने अनुभवों से जोड़ना महत्वपूर्ण माना जाता है । कल्पना हमारे सहज ज्ञान से संबंधित है । वैचारिक अधिगम बौद्धिक एवं मौखिक स्तर को दर्शाता है जो कि वाक्यों द्वारा व्यक्त किया जाता है। व्यवहारिक ज्ञान का अर्थ है किसी कौशल को सीखना तथा उसमें निपुण होना। शैक्षणिक अधिगम को अन्य छात्रों का सहयोग भी सुगम बनाता है । समूह आधारित शिक्षा, अभ्यास तथा अनुभव द्वारा किया गया अधिगम, सीखने को सुविधाजनक बनाने हेतु महत्वपूर्ण होते हैं।

5.3.1 सुविधाप्रदाता तथा शिक्षक में मूलभूत अंतर:

सुविधा प्रदाता के रूप में शिक्षक छात्रों को एक पूर्व निर्धारित लक्ष्य की तरफ मोड़ता है। नेतृत्व करने की क्षमता एक अच्छे सुविधा प्रदाता का मुख्य लक्षण है। हर शिक्षक के अन्दर यह गुण होना ही चाहिए। आवश्यकता है इसे अच्छी तरह समझ कर आत्मसात करने की। जब भी हम किसी ऐसे व्यक्ति के विषय में सोचते हैं जो नेतृत्व करता हो तो सबसे पहले एक शिक्षक का ही ध्यान आता है। परन्तु एक कक्षा में शिक्षण करने तथा एक समूह के कार्यों को सुगम बनाने में अंतर है। एक सुविधा प्रदाता और शिक्षक के बीच अंतर क्या है? यह उनके द्वारा कक्षा में संपादित कार्यों से स्पष्ट हो सकता है।

1. शिक्षक मुख्यतः शिक्षण करता है। कक्षा में वह एक प्रभारी की तरह कार्य करता है। परन्तु एक सुविधा प्रदाता समूह को किसी पूर्व निर्धारित कार्य को करने में सहायता करता है।
2. शिक्षक एक विशेषज्ञ की तरह अपने विषय में पारंगत होता है तथा इसे छात्रों तक स्थानांतरित करने का प्रयास करता है। परन्तु सुविधा प्रदाता यह जानने का प्रयास करता है कि विद्यार्थी क्या करना चाहते हैं।
3. शिक्षक अपने पाठ्यक्रम के विषय में जानता है । परन्तु सुविधा प्रदाता छात्रों के पूर्वज्ञान के आधार पर छात्रों का मार्गदर्शन करता है तथा उनसे सीखता भी है।
4. शिक्षक छात्र-गतिविधियों को पूर्व नियोजित करता है जबकि सुविधा प्रदाता छात्रों से प्रश्न कर के निर्णय लेता है कि वह क्या करना चाहते हैं।

5. शिक्षक छात्रों के अधिगम को मापने हेतु उनका मूल्यांकन करता है, परन्तु सुविधा प्रदाता समूह को स्वयं का मूल्यांकन करने देता है। उसके पश्चात ही वह निश्चय करता है कि उन्होंने कितना अच्छा किया है।

5.3.2 सुविधा प्रदाता बनने हेतु शिक्षक के द्वारा किये जाने वाले महत्वपूर्ण प्रयास:

1. शिक्षक को यह समझना चाहिए कि सुविधा प्रदान करना भी एक तरह का सीखना है तथा इससे होने वाले शोर तथा गड़बड़ी से उसको विचलित नहीं होना चाहिए।
2. शिक्षक को छात्रों के दैनिक अनुभवों को प्रेरणादायी तथा सुखद बनाना चाहिए।
3. शिक्षक को छात्रों के पूर्व–ज्ञान का अनुमान होना चाहिए।
4. शिक्षक के अंदर प्रतिदिन कुछ नया सीखने तथा सिखाने का उत्साह होना चाहिए।
5. शिक्षक को पाठ को दिलचस्प बनाना चाहिये।
6. शिक्षक को एक अच्छा श्रोता होना चाहिए।
7. शिक्षक को निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु छात्रों को प्रतिनिधि बना उनका सशक्तिकरण करने का अभ्यास होना चाहिए।
8. शिक्षक को छात्रों की आवश्यकताओं को समझना चाहिए।
9. शिक्षक को सही प्रश्नों का निर्धारण करना चाहिए ।
10. शिक्षक को रचनात्मक होकर पाठ्यक्रम में विद्यार्थियों के अनुसार गतिविधियों को सम्मिलित करना चाहिए।
11. शिक्षक को व्यावसायिक प्रशिक्षण जैसे सेमिनार आदि में भाग लेकर अपने व्यावसायिक विकास पर ध्यान देना चाहिए।
12. शिक्षक को अपने प्रदर्शन पर चिंतन तथा उसका मूल्यांकन अवश्य करना चाहिए।
13. शिक्षक को पाठ्यक्रम में छात्र सुलभ विविध गतिविधियों को सम्मिलित करना चाहिए।
14. शिक्षक को नवीनतम तकनीकों का प्रयोग करना चाहिए।
15. छात्रों के प्रति अपने व्यवहार को संवेदनशील तथा स्नेहपूर्ण बनाए रखना चाहिए।
16. शिक्षक को छात्रों में स्वयं सीखने की प्रवृति का निर्माण करना चाहिए।
17. शिक्षक को जिज्ञासा तथा रचनात्मकता के उपयोग द्वारा विद्यार्थियों के ध्यान को आकर्षित करना चाहिए।
18. शिक्षा हमेशा छात्र-केन्द्रित हो, इसका सदैव ध्यान रखना चाहिए।
19. हर छात्र को अलग तथा विशेष मानते हुए उसका आदर करना चाहिए।
20. शिक्षक को किसी भी स्थिति में छात्र का मज़ाक नहीं उड़ाना चाहिए जिससे उसमें कुंठा तथा अधिगम के प्रति अरुचि उत्पन्न हो सकती है।
21. अपने छात्रों को सक्रिय तथा व्यापक रूप से सुनना चाहिए।

22. शिक्षक को छात्रों को बीच में टोकना नहीं चाहिए। उन्हें उत्तर देने से पहले उनकी बातों को ध्यान से सुनना चाहिए।
23. छात्रों के प्रति अध्यापक के व्यवहार को सहानुभूति पूर्ण होना चाहिए।
24. प्रत्येक छात्र की विशेषता के प्रति अध्यापक को सजग होना चाहिए।
25. दैनिक जीवन से उदाहरण लेकर शिक्षक को छात्रों को प्रेरित करना चाहिए।
26. छात्र सुगम भाषा का प्रयोग करना चाहिए। हर शिक्षक को क्लिष्ट शब्दों का अर्थ छात्रों को समझाना चाहिए।
27. शिक्षक से सुविधा प्रदाता बनने पर ध्यान देना चाहिए जिससे छात्र कल्याण हो सके।

अभ्यास प्रश्न

1. सुविधा प्रदाता शब्द के अर्थ को उजागर कीजिये।
2. अधिगम के चार घटकों के नाम बताइए।
3. सुविधा प्रदाता तथा शिक्षक के बीच अंतर को स्पष्ट कीजिये।

5.4 छात्र सुख्रावद स्थिति (Student Well-Being) की परिभाषा तथा उसके घटक:

'छात्रों की सुखावद स्थिति' इस शब्द का प्रयोग प्रायः बाल विकास के अध्ययन में किया जाता है परन्तु इसे विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया गया है। अतः विद्यालय में छात्रों को इसके मानक अनिश्चित ही हैं। कभी-कभी इस शब्द की जगह छात्र कल्याण एवं मानसिक स्वास्थ्य जैसे शब्द ले लेते हैं। जबकि ये एक बहुआयामी समग्र अवधारणा है। इसे छात्र–कल्याण के रूप में समझा जा सकता है। प्रत्येक विद्यार्थी के समाज में महत्वपूर्ण योगदान देने तथा अपने कार्य को भली-भाँति करने की क्षमता तथा अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने को उसके कल्याण से जोड़कर देखा जा सकता है। छात्रों में सुखावद स्थिति होने के कुछ महत्वपूर्ण लक्षण निम्न प्रकार के हो सकते है :

विद्यार्थियों में;

1. आत्मविश्वास, आशावाद, आत्मसम्मान तथा उत्तरदायित्व होना।
2. नैतिकता के प्रश्नों पर निर्णय लेने की क्षमता।
3. समस्या का विश्लेषण कर उसे सुलझाने की क्षमता।
4. अपने विचारों तथा सूचनाओं को सफलतापूर्वक दूसरों तक पहुँचाना।
5. दूसरों के साथ सहयोग कर एवं संगठित होकर कक्षा में कुशलतापूर्वक कार्य करना।

छात्र सुखावद स्थिति की परिभाषा निम्नलिखित हैं :

"विद्यार्थियों में शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्षमता का आभास ही उनकी सुखावद स्थिति की ओर इंगित करता है।"

अभ्यास प्रश्न

4. छात्रों में सुखावद स्थिति को परिभाषित कीजिये।
5. छात्रों में सुखावद स्थिति के लक्षणों का वर्णन कीजिये।

5.5 छात्र सुख्रावद स्थिति के महत्वपूर्ण घटक

5.5.1 शारीरिक कल्याण : "शारीरिक" जीवन के उन हिस्सों को इंगित करता है हमारे शरीर की भौतिक इंद्रियों और संवेदी अनुभव से संबंधित हैं तथा भौतिक और प्राकृतिक वातावरण से सामंजस्य स्थापित (जैसे, निर्माण करना, अलग करना, विवरण, उत्पादन) करने में सहायता करते हैं। शारीरिक कल्याण के क्षेत्र तथा इसके सूचक हैं छात्रों का पोषण, शारीरिक गतिविधि, शारीरिक सुरक्षा तथा उनका स्वास्थ्य। विद्यालय में पाठ्यक्रम के माध्यम से छात्रों को उचित स्वास्थ्य सम्बंधित जानकारी दी जानी चाहिये। विद्यालय में छात्र के शारीरिक कल्याण हेतु उसके पोषण तथा गतिविधि पर शिक्षक को हमेशा ध्यान देना चाहिए। छात्रों में कुछ शारीरिक लक्षण जैसे पेट दर्द, सिरदर्द जैसी समस्याओं को शिक्षक को अनदेखा नहीं करना चाहिए। शिक्षक को एक सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए छात्रों की भावनात्मक तथा शारीरिक सुरक्षा हेतु सदैव तत्पर रहना चाहिए। उसे पाठ्यक्रम में ऐसी गतिविधियाँ रखनी चाहिये जिससे छात्रों का शारीरिक विकास हो। खेल तथा व्यायाम को प्रतिदिन के पाठ्यक्रम में स्थान देकर छात्रों को शारीरिक रूप से दृढ़ किया जा सकता है। कक्षा में ऐसी जगहों पर ध्यान देना चाहिए जहाँ विद्यार्थियों को चोट लग सकती है तथा विद्यार्थियों को किसी भी प्रकार की हानि से बचाने के भरपूर प्रयास करने चाहिए।

छात्रों को शारीरिक तथा मानसिक सुरक्षा प्रदान करने में भी शिक्षक का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। छात्रों को स्वतंत्र रूप से अपनी बात कहने का मौका देकर शिक्षक उनको सम्बल दे सकता है। विभिन्न दैनिक शारीरिक गतिविधियों तथा स्वास्थ्यवर्धक भोजन की नीतियों को प्रभावी रूप से लागू कर के शिक्षक छात्रों के भौतिक कल्याण को सुनिश्चित कर सकते हैं।

5.5.2 संज्ञानात्मक कल्याण:

विद्यालय में होने वाली शिक्षा, गुणवत्ता कार्यक्रम, पाठ्यक्रम, शिक्षकों का नेतृत्व, छात्र उपलब्धि, छात्र अनुबंध के तरीके इत्यादि का छात्रों की सुखावद स्थिति पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। छात्रों के संज्ञानात्मक कल्याण के लिए एक शिक्षक निम्न प्रयास कर सकता है;

1. अधिगम के ऐसे तरीकों का चयन जिससे छात्र पूर्व निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति कर सकें।
2. विद्यार्थियों की कठिन कार्यों को करने की क्षमता को विकसित करने हेतु विभिन्न कार्यक्रमों को पाठ्यक्रम में संलग्न करने का प्रयास कर सकते हैं।
3. प्रयोग एवं आश्चर्य का भरपूर उपयोग कर छात्रों के आत्म-विश्वास तथा उपलब्धि में वृद्धि करने का प्रयास कर सकते हैं।

5.5.3 सामाजिक कल्याण:

विद्यालय में सकारात्मक मानसिक-सामाजिक वातावरण छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य तथा कल्याण को प्रभावित कर उनके अधिगम में सुधार लाता है। यदि कोई छात्र भावनात्मक रूप से सक्षम है तो वह भविष्य में प्रभावी सामाजिक व्यवहार कर पायेगा तथा शैक्षिक गतिविधियों में भी सक्षम होगा। भावनात्मक तथा सामाजिक रूप से शिक्षक को छात्रों का ध्यान रखना चाहिए जिससे उनका कल्याण हो। शिक्षक का कर्तव्य है की वह एक ऐसे वातावरण का निर्माण करें जो हिंसा तथा मानसिक उत्पीड़न विहीन हो। उसे छात्रों को अपनी मनःस्थिति कहने के अवसर देने चाहिए। शिक्षक को अपना व्यवहार मित्रवत रखना चाहिए जिससे विद्यार्थी सुरक्षित महसूस कर सकें। सकारात्मक सामाजिक वातावरण को बनाने में शिक्षक का पक्षपात विहीन व्यवहार भी कारगर साबित होता है। उसे सभी बच्चों को समान अवसर प्रदान करना चाहिए तथा भाषा, लिंग, रंग, आर्थिक रूप के आधार पर किसी भी छात्र से भेद-भाव नहीं करना चाहिए। शोध में यह पाया गया है की जो छात्र विद्यालय से जुड़े होते हैं, वह धूम्रपान, नशीले पदार्थ के सेवन इत्यादि से दूर रहते हैं। ऐसे में शिक्षक को स्वयं एक आदर्श उदाहरण के रूप में स्थापित करने की आवश्यकता है।

5.5.4 मानसिक कल्याण

" मानसिक" जीवन के उस हिस्से से सम्बंधित है जो मुख्यतः अनुभूति और तर्कसंगत मन की प्रक्रियाओं को दर्शाता है (उदाहरण के लिए सोचना, योजना बनाना, मूल्यांकन करना इत्यादि)। छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का प्रतिनिधित्व उनकी मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक स्थिति करती है। मानसिक स्वास्थ्य के सकारात्मक एवं नकारात्मक द्योतक हैं: आत्म-नियंत्रण, शैक्षिक योग्यता तथा अवसाद। बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर कई चीज़ें प्रभाव डालती हैं। जैसे कि अभिभावकों की आर्थिक स्थिति। देखा गया है कि निम्न आर्थिक वर्ग वाले बच्चों की अपेक्षा उच्च आर्थिक वर्ग वाले बच्चे मानसिक रूप से अधिक स्वस्थ होते है। आत्मविश्वास तथा कुछ कर दिखने की क्षमता भी बच्चे के मानसिक स्वास्थ्य, उसके सामाजिक संबंधों तथा विद्यालय में उसकी उपलब्धियों पर अनुकूल प्रभाव डालते हैं। ऐसे में शिक्षक को किसी भी छात्र में पनप रहे अवसाद के लक्षणों को पहचानने में सक्षम होना चाहिए। उसे छात्रों का उचित मार्गदर्शन कर उनके आत्मविश्वास को बढ़ावा देते रहना चाहिए। जो छात्र कक्षा में चुपचाप रहते हों, उनसे मित्रवत व्यवहार कर उनसे पूछते रहना चाहिए कि उस बच्चे को कोई परेशानी तो नहीं।

विद्यालय में छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले कुछ कारण निम्नलिखित हो सकते है, जिनके प्रति शिक्षक को सजग रहने की आवश्यकता है :

1. छात्र अनुपस्थिति तथा एकाकीपन।
2. अन्य छात्रों द्वारा डराना अथवा धमकाना।
3. छात्र की निम्न शैक्षणिक उपलब्धि।
4. विद्यार्थी में हिंसा अथवा आक्रामकता की प्रवृत्ति।
5. विद्यार्थी में अधिगम के प्रति अरुचि तथा अक्षमता।
6. विद्यार्थी में अन्य छात्रों से सांस्कृतिक अंतर।

7. छात्र में आत्मविश्वास की कमी।
8. विद्यार्थी के जीवन में कुछ तनावपूर्ण घटनाओं का घटित होना।
9. अभिभावकों तथा विद्यालय के बीच ताल-मेल का अभाव।
10. घर अथवा विद्यालय में कठोर तथा असंगत अनुशासन।

5.5.5 आध्यात्मिक कल्याण

आध्यात्मिक" अखंड जीवन ऊर्जा को दर्शाती है जो विविधता (जैसे, अर्थ की अभिव्यक्ति और जीवन उद्देश्य, प्रेरणा, शांतिपूर्ण उपस्थिति, सहानुभूति) में परिलक्षित होती है। इसे पहचानने के लिए शिक्षक को यह दृष्टिकोण अपनाना होगा कि बच्चे स्वाभाविक रूप से आध्यात्मिक होते हैं। उन्हें बच्चों की इस आध्यात्मिकता को बढ़ावा देने के तरीके खोजने का प्रयास करते रहना चाहिए। आध्यात्म जैसे क्लिष्ट घटक को समझने के लिए पहले शिक्षक को स्वयं से कुछ प्रश्न पूछने होंगे जो इस विषय की और प्रकाश डालें कि क्या उनकी शिक्षण शैली छात्रों में आध्यात्मिक विकास को समर्थन दे रही है ? जैसे :

1. क्या वह इस प्रकार की शिक्षण नीतियां अपना रहें हैं जिससे छात्रों को अन्वेषण करने के अवसर प्राप्त हों ?
2. क्या छात्रों को शिक्षक से प्रश्न करने की अनुमति है ?
3. क्या छात्र को शिक्षक द्वारा कल्पना करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ?
4. क्या शिक्षक पूर्व नियोजित विधि से ही शिक्षण करता है अथवा वह कभी-कभी छात्रों की अभिरुचि बनाये रखने हेतु नवीनतम शिक्षण विधियों का प्रयोग करता है ?
5. क्या शिक्षक उन्हें अधिगम में बराबर भागीदार के रूप में मानते हैं ?
6. क्या शिक्षक द्वारा दी जा रही शिक्षा सक्रिय तथा लोकतांत्रिक है ?
7. क्या शिक्षक के अध्यापन में आध्यात्मिकता का समावेश है ?
8. हर पाठ के समापन पर क्या शिक्षक छात्रों से चिंतन करने को कहता है ?

यदि कोई भी शिक्षक ऊपर दिए गये प्रश्नों के उत्तर हाँ में देता है तो वह छात्रों के अध्यात्मिक विकास के प्रति सजग है। छात्रों में आध्यात्मिक विकास हेतु शिक्षक को निम्नलिखित प्रयास करने चाहिये :

1. अध्यात्म के प्रति छात्रों की समझ को विकसित करना चाहिए।
2. अध्यात्म के विषय में अध्यापक को स्वयं के ज्ञान और जागरूकता में विस्तार करना चाहिए।
3. शिक्षक को अनुभवों की समृद्ध श्रृंखला द्वारा छात्रों को आध्यात्म की तरफ मोड़ना चाहिए ।
4. शिक्षक को छात्रों में आत्म-चिंतन एवं आत्म-विश्लेषण को बढ़ावा देना।
5. शिक्षक को छात्रों की गतिविधियों को एक समग्र रूप में देखना।

अभ्यास प्रश्न

6. छात्र सुखावद स्थिति के घटक कौन-कौन से हैं ?

7. विद्यालय में छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले कुछ कारणों को लिखिए।
8. छात्रों में आध्यात्मिक विकास के लिए शिक्षक द्वारा किये जाने वाले कुछ प्रयास लिखिए।

5.6 छात्रों में सुखावद स्थिति को लाने हेतु अध्यापकों का सहयोग करने वाली गतिविधियाँ

अध्यापक को उन सुरक्षात्मक कारकों के विषय में अवगत होना चाहिए जो विद्यार्थियों के स्वास्थ्य और कल्याण को प्रभावित करते हैं। कई कारक जो छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं वह उनके घरों या फिर व्यापक समाज में स्थित हो सकते हैं। इन कारकों के प्रभाव को क्षीण करने हेतु विद्यालय एक सशक्त माध्यम बन सकता है। प्रायः यह देखा गया है कि यदि किसी युवा के जीवन में एक सहायक वयस्क व्यक्ति की उपस्थिति हो तो उससे उनमें आत्मविश्वास और कठिनाइयों से निपटने की क्षमता का विकास होता है। विद्यालय में इसी वयस्क व्यक्ति की भूमिका एक अध्यापक सक्रिय रूप से निभा सकता है। शिक्षक द्वारा दिए गये मार्गदर्शन से विद्यार्थी मानसिक रूप से स्वस्थ तथा समाज के प्रति सजग हो सकता है।

छात्र शैक्षिक रूप से कभी भी सफल नहीं हो सकते यदि उनकी सुखावद स्थिति में कोई बाधा हो। विद्यालय में वातावरण सुरक्षित एवं भय मुक्त होना चाहिए। विद्यालय में उन्हें एक प्रेरणादायी जीवन प्रणाली अपनाने हेतु सहायता मिलनी चाहिए। देखा गया है कि जो छात्र सुखावद स्थिति की अनुभूति करते हैं वह स्थिति के अनुरूप स्वयं को ढाल कर शिक्षार्थियों के रूप में अधिक सफल होते हैं तथा भविष्य में कुशल व समाजोपयोगी नागरिक बनते हैं। छात्रों के लिए एक कल्याणकारी लक्ष्य निर्धारित करते समय शिक्षक को निम्नलिखित विषयों पर ध्यान देना चाहिए :

1. छात्र कल्याण एवं सुखावद स्थिति का मूलभूत ज्ञान और समझ।
2. अधिगम का वातावरण।
3. छात्रों में अपनेपन की भावना का विकास।
4. छात्रों में नेतृत्व तथा आत्मविश्वास का विकास।
5. माता-पिता / समुदाय का सहयोग।

5.6.1 छात्र कल्याण एवं सुखावद स्थिति का मूलभूत ज्ञान और समझ।

विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक, भावनात्मक, सामाजिक, शारीरिक तथा अध्यात्मिक कल्याण को ही उनकी सुखावद स्थिति से जोड़ कर देखा जा सकता है। ऐसे में हर अध्यापक को निम्नलिखित कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।

1. छात्रों की सुखावद स्थिति के विषय में मूलभूत जानकारी रखना तथा छात्रों में इसका संचार करने हेतु उपयुक्त वातावरण का निर्माण करने में छात्रों का सहयोग करना।

2. छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य के लिए तीन चीज़ों का हमेशा ध्यान रखना। पहले तो विद्यालय तथा कक्षा में छात्रों के लिए सकारात्मक और सहायक वातावरण का निर्माण करना जिससे प्रत्येक छात्र लाभान्वित हो सके। दूसरा यह कि छात्रों में मानसिक अवसाद को बढ़ावा देने वाले कारकों को पहचान कर उन्हें हटाना। तीसरा मानसिक रूप से परेशान छात्रों की सहायता करना।
3. मानसिक रूप से संघर्षरत छात्रों में लक्षणों के प्रति सजग रहना।
4. जो छात्र मानसिक रूप से परेशान हों उनके सहयोग के लिए व्यावसायिक मदद लेना।

5.6.2 अधिगम का वातावरण

शिक्षक को छात्र-कल्याण के लिए एक ऐसे अनुकूल वातावरण का निर्माण करना होगा जिसमें विद्यार्थी भयमुक्त होकर अपनेपन की अनुभूति कर सके। इसके लिए शिक्षक को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना होगा:

1. सामाजिक तथा भावनात्मक अधिगम के अवसर प्रदान करने चाहिए जिससे छात्रों में समकक्षता का आभास हो।
2. शिक्षक का छात्रों के जीवन के विषय में ज्ञान रखना अतिआवश्यक है।
3. हर छात्र भिन्न होता है इस बात को समझते हुए उन्हें अलग-अलग विधियों से अधिगम के अवसर प्रदान करना चाहिए तथा इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कोई पिछड़ ना जाये।
4. छात्रों, कर्मचारियों, माता-पिता और समुदाय के बीच सकारात्मक संबंधों को विकसित करना चाहिए।
5. छात्रों में सहयोग तथा योगदान करने की क्षमता का विकास करने हेतु उचित अवसर प्रदान करने चाहिए।

5.6.3 छात्रों में अपनेपन की भावना का विकास

अपनेपन की भावना से तात्पर्य यह है कि छात्र को कक्षा में सम्मान एवं सहयोग मिले जिससे वह अपने वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके। छात्र उपलब्धि में शिक्षक-छात्र संबंधों का विशेष योगदान होता है। शिक्षक को छात्रों के लिए सदैव उपस्थित होना चाहिए जिससे वह अपनी मुश्किलें उससे बता सकें। इसके लिए शिक्षकों को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :

1. शिक्षक को छात्रों के मध्य किसी भी प्रकार के भेद-भाव करने से बचना चाहिए।
2. अध्यापक को विद्यार्थियों में आत्मविश्वास का संचार करना चाहिए।
3. अध्यापक को मार्गदर्शक बन कर छात्रों के गुणों को निखारना चाहिए।
4. शिक्षक को छात्रों के साथ-साथ स्वयं तथा सहयोगियों की सुखावद स्थिति पर भी ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।
5. समय-समय पर विद्यार्थियों की प्रशंसा कर के उनके मनोबल को बढ़ावा देना चाहिए।
6. शिक्षक छात्रों के प्रति सदैव आशावादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

7. शिक्षक को समय-समय पर छात्रों को आशान्वित करने हेतु दैनिक जीवन तथा महापुरुषों के जीवन से उदाहरण देते रहना चाहिए।
8. अध्यापक को कक्षा में छात्र-सहभागिता को बढ़ावा देना चाहिए।

5.6.3 छात्रों में नेतृत्व तथा आत्मविश्वास का विकास ।

छात्रों को अपने विचारों को प्रस्तुत करने के अवसर प्रदान कर शिक्षक उनमें नेतृत्व तथा आत्म-विश्वास का संचार कर सकता है । छात्र एक अद्वितीय परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करते हैं जो स्वस्थ और सकारात्मक वातावरण के निर्माण में योगदान देता है । इसके लिए शिक्षकों को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये :

1. अध्यापक को विद्यालय में मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता विकसित करने में छात्रों के साथ मिलकर सहयोग करना चाहिए।
2. छात्रों की बातों को ध्यानपूर्वक सुनकर सकारात्मक प्रतिक्रिया देने का प्रयास करना चाहिए। इससे छात्र अपने मन की बात को आत्मविश्वास के साथ रख पाएंगे।
3. शिक्षक को छात्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए।
4. अपने कार्यों व कर्तव्यों के प्रति सजग रह कर हर शिक्षक को छात्रों में स्वयं के प्रति विश्वास जागृत करने का प्रयास करना चाहिए।
5. किसी भी समस्या का हल खोजने में विद्यार्थियों के योगदान को सर्वोपरि रखना चाहिए।
6. छात्र कल्याण में उनके नेतृत्व की अहम भूमिका को समझना चाहिए।

5.6.4 माता-पिता तथा समुदाय का सहयोग।

बच्चों में सुरक्षा की भावना का विकास, अभिभावकों, विद्यालय के कर्मचारियों तथा समुदाय का एक सम्मिलित प्रयास है। उनके सुखावद स्थिति के लिए उनसे जुड़े सभी लोग जिम्मेदार हैं। इसीलिए सबको मिलकर छात्र कल्याण को समझना और बढ़ावा देना चाहिए । इसके लिए शिक्षकों को निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

1. छात्रों के संपूर्ण विकास के लिए उनके अभिभावकों तथा समुदाय से परामर्श तथा सहयोग का निरंतर प्रयास हर शिक्षक को करते रहना चाहिए।
2. विद्यार्थियों के विकास के विषय में शिक्षक को अभिभावकों को सूचित करते रहना चाहिए। उनसे छात्रों के गुणों, क्षमताओं तथा भय के विषय में चर्चा भी करनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

9. छात्रों के लिए एक कल्याणकारी लक्ष्य निर्धारित करते समय शिक्षक को किन बातों का रखना चाहिए।
10. किन प्रयासों से शिक्षक छात्रों में नेतृत्व तथा आत्म-विश्वास का विकास कर सकता है ?

5.7 सारांश

विद्यार्थियों को ऐसे मानसिक रूप से दृढ़ शिक्षकों के समर्थन की आवश्यकता होती है जो उनकी मनोदशा, भावनात्मक , सामाजिक, शारीरिक, तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं को समझ सकें तथा उनके विकास में सहयोग प्रदान कर सकें। छात्र एक शिक्षक को आदर्श के रूप में स्वीकार करते हैं। इसीलिए हर शिक्षक का कर्तव्य है की उनकी देखभाल करें और जीवन की चुनौतियों से निपटने के लिए उन्हें सशक्त बनाये। छात्रों की सफलता के लिए उनमें आशावाद, आत्म-विश्वास, समायोजन, सुरक्षा की भावना का संचार, एक शिक्षक ही कुशलता पूर्वक कर सकता है। शारीरिक स्वास्थ्य ,पोषण, शारीरिक गतिविधियाँ इत्यादि सुनिश्चित करेंगी की छात्र शारीरिक रूप से सक्षम है। इसी तरह कक्षा का वातावरण तथा शिक्षक का व्यवहार भी उसकी मनःस्थिति को प्रभावित करेगा। शिक्षक को इसीलिए छात्रों के साथ मिल कर एवं उनके सहयोगी के रूप में उनका तथा स्वयं के उत्थान के लिए निरंतर कार्यरत रहना चाहिए।

5.8 शब्दावली

1. सुखावद स्थिति: विद्यार्थियों में शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्षमता का आभास ही उनकी सुखावद स्थिति की ओर इंगित करता है।
2. सुविधा प्रदाता: सुविधा प्रदाता से आशय है वह व्यक्ति जो किसी कार्य को करने में सहायता प्रदान कर उसे सुगम बनाये। सुविधा प्रदाता लक्ष्य का निर्णय नहीं करता अपितु वह एक समूह की उस लक्ष्य निर्धारण तथा उस तक पहुँचने में मदद करता है। वह किसी भी कार्य को करने की प्रक्रिया तय करने में समूह की सहायता करता है न की स्वयं कार्य करता है।
3. शारीरिक : "शारीरिक" जीवन के उन हिस्सों को इंगित करता है हमारे शरीर की भौतिक इंद्रियों और संवेदी अनुभव से संबंधित हैं तथा भौतिक और प्राकृतिक वातावरण से सामंजस्य स्थापित (जैसे, निर्माण करना, अलग करना, विवरण, उत्पादन) करने में सहायता करते हैं।
4. मानसिक: " मानसिक" जीवन के उस हिस्से से सम्बंधित है जो मुख्यतः अनुभूति और तर्कसंगत मन की प्रक्रियाओं को दर्शाता है (उदाहरण के लिए सोचना, योजना बनाना, मूल्यांकन करना इत्यादि)। छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य का प्रतिनिधित्व उनकी मनोवैज्ञानिक तथा भावनात्मक स्थिति करती है।
5. आध्यात्मिक: आध्यात्मिक" अखंड जीवन ऊर्जा को दर्शाती है जो विविधता (जैसे, अर्थ की अभिव्यक्ति और जीवन उद्देश्य, प्रेरणा, शांतिपूर्ण उपस्थिति, सहानुभूति) में परिलक्षित होती है।

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. यहाँ सुविधा प्रदाता से आशय है वह व्यक्ति जो किसी कार्य को करने में सहायता प्रदान कर उसे सुगम बनाये। सुविधा प्रदाता लक्ष्य का निर्णय नहीं करता अपितु वह एक समूह की उस लक्ष्य निर्धारण तथा उस तक पहुँचने में मदद करता है। वह किसी भी कार्य को करने की प्रक्रिया तय करने में समूह की सहायता करता है न की स्वयं कार्य करता है। सुविधा प्रदाता के रूप में एक शिक्षक का महत्वपूर्ण कार्य है की वह किसी भी लक्ष्य तक पहुँचने की प्रक्रिया निर्धारित करे ताकि छात्रों का उस तक पहुंचना सुगम बन सके। इस कार्य को सरलीकरण भी कह सकते हैं।
2. अनुभव, कल्पना, विचार और व्यवहार।
3. शिक्षक तथा सुविधा प्रदाता के बीच के अंतर निम्नलिखित हैं:
    - शिक्षक का मुख्यतः शिक्षण करता है। कक्षा में वह एक प्रभारी की तरह कार्य करता है। परन्तु एक सुविधा प्रदाता समूह को किसी पूर्व निर्धारित कार्य को करने में सहायता करता है।
    - शिक्षक एक विशेषज्ञ की तरह अपने विषय में पारंगत होता है तथा इसे छात्रों तक स्थानांतरित करने का प्रयास करता है। परन्तु सुविधा प्रदाता यह जानने का प्रयास करता है की विद्यार्थी क्या करना चाहते हैं।
    - शिक्षक अपने पाठ्यक्र के विषय में जानता है। परन्तु सुविधा प्रदाता छात्रों के पूर्वज्ञान के आधार पर छात्रों का मार्गदर्शन करता है तथा उनसे सीखता भी है।
    - शिक्षक छात्र-गतिविधियों को पूर्व नियोजित करता है जबकि सुविधा प्रदाता छात्रों से प्रश्न कर के निर्णय लेता है की वह क्या करना चाहते हैं।
    - शिक्षक छात्रों के अधिगम को मापने हेतु उनका मूल्यांकन करता है, परन्तु सुविधा प्रदाता समूह को स्वयं का मूल्यांकन करने देता है। उसके पश्चात ही वह निश्चय करता है की उन्होंने कितना अच्छा किया है।
4. विद्यार्थियों में शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक क्षमता का आभास ही उनकी सुखावद स्थिति की ओर इंगित करता है
5. विद्यार्थियों में सुखावद स्थिति के लक्षण निम्नलिखित हैं;
    - आत्मविश्वास, आशावाद, आत्मसम्मान तथा उत्तरदायित्व होना।
    - नैतिकता के प्रश्नों पर निर्णय लेने की क्षमता।
    - समस्या का विश्लेषण कर उसे सुलझाने की क्षमता।
    - अपने विचारों तथा सूचनाओं को सफलतापूर्वक दूसरों तक पहुँचाना।
    - दूसरों के साथ सहयोग कर एवं संगठित होकर कक्षा में कुशलतापूर्वक कार्य करना।

6. छात्र सुखावद स्थिति के मुख्य घटक हैं , शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक।
7. विद्यालय में छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने वाले कुछ कारण निम्नलिखित हो सकते है, जिनके प्रति शिक्षक को सजग रहने की आवश्यकता है :
    - छात्र अनुपस्थिति तथा एकाकीपन।
    - अन्य छात्रों द्वारा डराना अथवा धमकाना।
    - छात्र की निम्न शैक्षणिक उपलब्धि।
    - विद्यार्थी में हिंसा अथवा आक्रामकता की प्रवृत्ति।
    - विद्यार्थी में अधिगम के प्रति अरुचि तथा अक्षमता।
    - विद्यार्थी में अन्य छात्रों से सांस्कृतिक अंतर।
    - छात्र में आत्मविश्वास की कमी।
    - विद्यार्थी के जीवन में कुछ तनाव पूर्ण घटनाओं का घटित होना।
    - अभिभावकों तथा विद्यालय के बीच ताल-मेल का अभाव।
    - घर अथवा विद्यालय में कठोर तथा असंगत अनुशासन।
8. छात्रों में आध्यात्मिक विकास हेतु शिक्षक को निम्नलिखित प्रयास करने चाहिये :
    - अध्यात्म के प्रति छात्रों की समझ को विकसित करना चाहिए।
    - अध्यात्म के विषय में अध्यापक को स्वयं के ज्ञान और जागरूकता में विस्तार करना चाहिए।
    - शिक्षक को अनुभवों की समृद्ध श्रृंखला द्वारा छात्रों को अध्यात्म की तरफ मोड़ना चाहिए ।
    - शिक्षक को छात्रों में आत्म-चिंतन एवं आत्म-विश्लेषण को बढ़ावा देना।
    - शिक्षक को छात्रों की गतिविधियों को एक समग्र रूप में देखना।
9. छात्रों के लिए एक कल्याणकारी लक्ष्य निर्धारित करते समय शिक्षक को निम्नलिखित विषयों पर ध्यान देना चाहिए :
    - छात्र कल्याण एवं सुखावद स्थिति का मूलभूत ज्ञान और समझ।
    - अधिगम का वातावरण।
    - छात्रों में अपनेपन की भावना का विकास।
    - छात्रों में नेतृत्व तथा आत्मविश्वास का विकास।

- माता-पिता / समुदाय का सहयोग।

10. इसके लिए शिक्षकों को निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये :

- अध्यापक को विद्यालय में मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता विकसित करने में छात्रों के साथ मिलकर सहयोग करना चाहिए।
- छात्रों की बातों को ध्यानपूर्वक सुनकर सकारात्मक प्रतिक्रिया देने का प्रयास करना चाहिए। इससे छात्र अपने मन की बात को आत्मविश्वास के साथ रख पाएंगे।
- शिक्षक को छात्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखना चाहिए।
- अपने कार्यों व कर्तव्यों के प्रति सजग रह कर हर शिक्षक को छात्रों में स्वयं के प्रति विश्वास जागृत करने का प्रयास करना चाहिए।
- किसी भी समस्या का हल खोजने में विद्यार्थियों के योगदान को सर्वोपरि रखना चाहिए।
- छात्र कल्याण में उनके नेतृत्व की अहम भूमिका को समझना चाहिए।

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. NCTE (2009); *National curriculum framework for teacher education*, New Delhi
2. Fraillon, J. (2004). Measuring Student Well-Being in the Context of Australian Schooling:Discussion Paper. Australia: Ministerial Council on Education, Employment, Training and Youth Affairs. Retrieved from https://www.google.co.in/search?q=Measuring+Student+Well-Being+in+the+Context+of+Australian+Schooling%3A+Discussion+Paper&oq=Measuring+Student+Well-Being+in+the+Context+of+Australian+Schooling%3A+Discussion+Paper&aqs=chrome..69i57.5923j0j7&sourceid=chrome&ie=UTF-8

5.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. सुविधा प्रदाता तथा सहयोगी के रूप में शिक्षक की भूमिका की एक सैद्धांतिक रूपरेखा खींचिए।
2. सुविधा प्रदाता बनने हेतु शिक्षक के द्वारा किये जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण प्रयास लिखिए।
3. छात्र सुखावद स्थिति के महत्वपूर्ण घटकों के विषय में समझकर लिखिए।
4. छात्रों में सुखावद स्थिति की ओर ले जाने में अध्यापक का सहयोग करने वाली गतिविधियों को स्पष्ट करें।